1998 से निरंतर प्रकाशित

ISSN 2581-446X
वर्ष-1, अंक-6, जून-जुलाई 2018 ₹ 25/-

कला समय

कला और विचार की द्वैमासिकी

RNI No. MPHIN/2017/73838

"सार्वभौमिक संगीत पर एकाग्र-1"

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

संग हो पुस्तक का उपहार
पढ़े–मुस्कुराए, हर होनहार
‘मिल–बाँचें मध्यप्रदेश’ कार्यक्रम में बच्चों के संग साझा करें अपना हुनर
उनके व्यक्तित्व के बहुआयामी विकास में सहयोगी बनें
7 अगस्त 2018
समस्त शासकीय प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं में
सहभागिता के लिए www.schoolchalehum.mp.gov.in पर
अपना पंजीयन 25 जुलाई तक अवश्य करें
मिल–बाँचें
मध्यप्रदेश
गिफ्ट–अ–बुक
Gift-a-Book
नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री
गिफ्ट–अ–बुक
कैम्पेन अंतर्गत शासकीय विद्यालयों को भेंट करें– ज्ञानवर्धक, मनोरंजक और प्रतियोगी परीक्षाओं में उपयोगी अपनी कुछ पुस्तकें।
ज्ञान और मनोरंजन की विविधता से भरा आपका यह उपहार, बच्चों में पढ़ने की ललक बढ़ायेगा और शाला के लिए एक अमूल्य धरोहर बनेगा।
शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री
जनप्रतिनिधि, प्रेरक, कार्यरत/सेवानिवृत्त शासकीय सेवक, डॉक्टर, इंजीनियर एवं निजी क्षेत्र में कार्यरत अन्य प्रोफेशनल, साहित्य एवं संस्कृति सेवी, शाला के पूर्व छात्र एवं उच्च कक्षाओं में अध्ययनरत विद्यार्थी भी ‘मिल–बाँचें मध्यप्रदेश’ एवं ‘गिफ्ट–अ–बुक’ कैम्पेन से जुड़ सकते हैं।
स्कूल चलें हम
अभियान
मध्यप्रदेश
आइये, ‘मिल–बाँचें मध्यप्रदेश’ कार्यक्रम में हम सब भागीदार बनें। बच्चों में किताबें पढ़ने की ललक जगाएं, कुछ खेलें–कुछ सिखाएं, उनके समग्र विकास में सहभागी बन जाएं।
डॉ. कुँवर विजय शाह, मंत्री, स्कूल शिक्षा
सीखने के लिए आनंददायी वातावरण, शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में सहायक है। आइये बच्चों को सौंपें चंद उपहार और आनंद के कुछ क्षण। एक बार फिर से स्कूल चलें हम।
दीपक जोशी, राज्यमंत्री, स्कूल शिक्षा
पढ़े ना कोई 12वीं से कम
अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें जिला शिक्षा केन्द्र/जनपद शिक्षा केन्द्र/शासकीय प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय या mil.banchyein@mp.gov.in पर ई–मेल करें
www.facebook.com/schooledu.mp www.schoolchalehum.mp.gov.in | www.educationportal.mp.gov.in/ @schooledump
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी
आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम/2018

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
WWW.KALASAMAYMAGAZINE.COM

ISSN 2581-446X
(वर्ष : 21+1) पूर्णांक-93,
वर्ष-1, अंक-6, जून-जुलाई 2018

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल द्वारा पुरस्कृत

कला समय

कला और विचार की द्वैमासिकी

रेखाचित्र- नागनाथ मनकेश्वर

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
94250 92893

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
9424417387
ललित शर्मा
98298 96368
राग तेलंग
9425603460

प्रतिनिधि
आस्था सक्सेना
94138 27189
गोपेश वाजपेयी
94243 00234

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेंढे (एडवोकेट)

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com
94256 78058

सह संपादक
लक्ष्मीकांत जवणे
laxmikantjawney@gmail.com
99936 22228

संपादक मंडल

सजल मालवीय	**हरीश श्रीवास**	**नरिन्दर कौर**
साहित्य	कला	प्रबंध

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	: 150 /-	(व्यक्तिगत)
	: 175 /-	(संस्थागत)
द्वैवार्षिक	: 300 /-	(व्यक्तिगत)
	: 350 /-	(संस्थागत)
चार वर्ष	: 500 /-	(व्यक्तिगत)
	: 600 /-	(संस्थागत)
आजीवन	: 5,000 /-	(व्यक्तिगत)
	: 6,000 /-	(संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग संपर्क -
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **WWW.KALASAMAYMAGAZINE.COM**

ऑनलाइन सुविधा 'कला समय' का बैंक खाता विवरण
ओरियन्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा (**IFSC : ORBC0100932**) में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में नगद राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना ना करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

इस बार

- संपादकीय / 5
  गुरु बिना अधूरी है, संगीत की यात्रा
- कला निकष / 6
  लक्ष्मीकांत जवणे
- बिसरत नाहीं : राग-संगीत का बह बेजोड़ ख़ज़ाना / 9
  पद्मश्री रमेशचन्द्र शाह
- भारतीय चित्र कला में राग माला / 12
  नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- बांग्ला देश में जन्मे उस्ताद विलायत खां किन्तु उनका सितार पूरी तरह भारतीय था / 14
  पं. विजयशंकर मिश्र
- कोरवार भूमि के सुयोग्य पुत्र : पं. सिद्धराम स्वामी कोरवार
  पं. सिद्धराम स्वामी कोरवार से भँवरलाल श्रीवास की बातचीत / 17
- जैसलमेर के भित्ति अलंकरण/19
  इंदुबाला
- रेत के झूंपों में स्वरों का संगम /20
  डॉ. महेन्द्र भानावत
- गुरु पूजन : एक संस्कार, इव्हेन्ट नहीं! /25
  माधवी नानल
- सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक रचनाधर्मिता के पथ प्रदर्शक /28
  डॉ. कुमार ऋषितोष
- संगीत में अभ्यास(रियाज़) का तरीका / 31
  प्रो. पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
- भारतीय संगीत-शिक्षण के लाभकारी 'कैप्सूल' / 33
  डॉ. मधु भट्ट तैलंग
- शास्त्रीय वादन तकनीकी पक्ष एवं आधुनिक युग में नई संभावनाएँ / 38
  डॉ. विवेक बनसोड
- विरासत सँजोती कलापिनी रचेंगी शास्त्रीय संगीत के नये आयाम / 42
  राजा दुबे
- गुरु-शिष्य परम्परा / 43
  डॉ. सीमा गोयल
- संगीत भगवत् सिद्धि का माध्यम है- पं. रविशंकर / 45
  पं. रविशंकर से ललित शर्मा की मुलाकात
- बनावट और दिखावे से कोसों दूर : उस्ताद अब्दुल लतीफ़ खाँ / 48
  श्याम मुन्शी
- योग एवं संगीत में गुरु-शिष्य का अंत: संबंध / 50
  जागृति
- दिल्ली घराने के सुप्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद फैयाज खाँ / 52
  अनिल कुमार शर्मा
- ध्रुवपदों के प्रत्यक्ष गायन का दुर्लभ प्रकाशन (समीक्षा)/ 54
  राम मेश्राम
- सारंगी के स्वर : आत्मिक संवेदनाओं की स्वर लहरी / 56
  राधेलाल बिजघावने
- ब.व. कारन्त (बाबूकोडी वेंकटरमण कारन्त) / 58
  रघुवीर होल्ला
- स्मृति शेष /59
  भारत भवन में अमृतलाल वेगड़ को किया याद
- समवेत (सांस्कृतिक समाचार)/

उत्कृष्ट पत्रिका के लिए 'रामेश्वर गुरु पुरस्कार' जल केन्द्रित मासिकी शिवम् पूर्णा को / कवि कैलाश मड़बैया के अमृत महोत्सव पर राज्यपाल ने की कीर्ति कलश स्थापना बुंदेली संगीत की प्रस्तुति / प्रतिष्ठित सांस्कृतिक संस्था अभिनव कला परिषद पर पीएच. डी. / संगीत-साहित्य की कृतियाँ /प्रतिष्ठित सांस्कृतिक पत्रिका कला समय के साथ गणमान्य प्रतिनिधि / आपके पत्र

- **नन्हें कलाकारों की दुनिया**- सुश्री सूर्यागायत्री, नाटक : पीली पूँछ / 65
- महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में /66
  निर्मिश ठाकर

निर्मिश ठाकर
वक्र चित्रकार

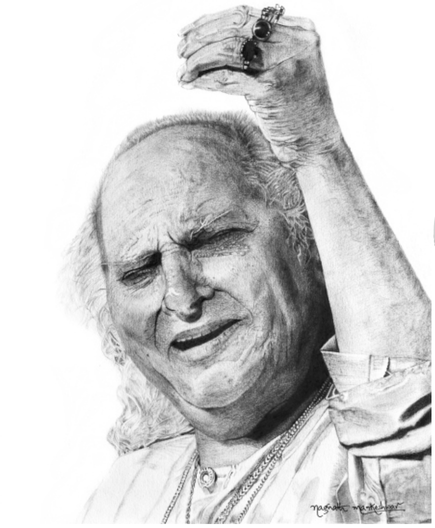

नागनाथ मनकेश्वर
चारकोल चित्रकार

राहुल श्रीवास
वाद्य यंत्रों की प्रतिकृति के शिल्पकार

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - **शिवम् ग्राफिक्स**, वाट्सएप नं.-07974917691, **आवरण** - राहुल श्रीवास, **छायाचित्र** - मनीष सराठे,
रेखाचित्र - नागनाथ मनकेश्वर, निर्मिश ठाकर, **विशेष सहयोग** - देवेन्द्र सक्सेना, कोटा(राजस्थान)।

संपादकीय

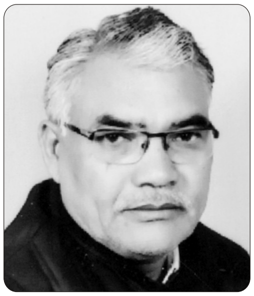

गुरु बिना अधूरी है, संगीत की यात्रा

''शिष्य को गुरु का अनुवादक नहीं होना चाहिये। उसे गुरु का अतीत भी नहीं होना चाहिए। शिष्य वास्तव में गुरु का भविष्य होता है। संगीत का भविष्य उसके सीमांकन में नहीं होता उसके अनंत विस्तार में ही संभव होता है।'' **- उस्ताद जिया फरीदुद्दीन खां डागर**

भारतीय मानस सृष्टि और संगीत का आविर्भाव ''ऊँ'' से जोड़ता है। संगीत की लयकारी में मनुष्य का अमरत्व छिपा है, इसे मानव ने अपने सुख-दु:ख में संगीत के साथ अपने कंठ से जोड़ा, प्रयासों के अनुरूप जैसे शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम और फिर वर्गीकृत होकर ध्रुपद, लोक वादन-गायन और समकालीन संगीत आदि अनेक रूपों में पिरोया ।

बिना गुरु के इन विधाओं में कुशल होना संभव नहीं होता, वह शास्त्रीय संगीत में शास्त्र सम्मत तथा लोक संगीत में परंपरा सम्मत ज्ञान तथा अभ्यास से शिष्य को सज्ज करता है। शास्त्रीय संगीत में गुरु की योग्यता और पक्षधरता के आधार पर ''घराने'' प्रकाश में आये। इन घरानों के कारण ही संगीत में हुई तत्कालीन खोजें नवीन प्रयोगों की मदद से रूढ़ि होने से बच गयीं और परम्परा के रूप में आज सुरक्षित हैं। नए अभ्यासकर्ता कई बार अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा को देश का या घराने का या अपना नाम रोशन करने का मुखौटा लगा कर वाहवाही, सम्मान या लोकप्रियता के दलदल में फंसा लेते हैं जो संगीत की विकासमान धारा को अवरुद्ध करता है। जयपुर, बनारस और ग्वालियर आदि नामचीन घराने प्राचीन संगीत व्याकरण को अपनी शैलियों के कारण जीवित रखने के लिए सदियों याद किये जायेंगे।

आधुनिकता ने भारतीय संगीत को शेष दुनिया के संगीत के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया है, फलत: वादन-गायन में तो अंतर आया ही पर वाद्यों की दुनिया में जबरदस्त बदलाव आया है। इलेक्ट्रानिकी के माध्यम से सुरों के असंख्य संयोजन (compositions) जिज्ञासुओं को उपलब्ध हैं, अपनी योग्यता और कौशल से, आकाश से उन धुनों को धरती पर उतारकर संगीत को समृद्ध कर रहे हैं।

''भटके ना मेरे बाद के आते हुए राही,
हर मोड़ पर कदमों के निशाँ छोड़ रहा हूँ''

यह शेर भविष्य की चिंता पर ''सतर्कता'' का सबक है। इस सबक की प्रेरणा से ''कला समय'' का संगीत पर लगातार दो अंक निकालने का साहस प्रयासाधीन है। पहला अंक तो आपके हाथों में है; इसमें खोजपरक व प्रेरणादायक तथ्यात्मक सामग्री के अवदान कर्ता महिषी हैं- पद्मश्री रमेशचन्द्र शाह, नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, पं. विजयशंकर मिश्र, पं. सिद्धराम स्वामी कोरवार, इंदुबाला, डॉ. महेन्द्र भानावत, माधवी नानल, डॉ. कुमार ऋषितोष, प्रो. पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग', डॉ. मधु भट्ट तैलंग, डॉ. विवेक बनसोड, राजा दुबे, डॉ. सीमा गोयल, ललित शर्मा, श्याम मुन्शी, जागृति, अनिल कुमार शर्मा, राम मेश्राम, राधेलाल बिजघावने, रघुवीर होल्ला, निर्मिश ठाकर, नागनाथ मनकेश्वर, विशेष सहयोग - देवेन्द्र सक्सेना, इस बार के आवरण पृष्ठ के वाद्य यंत्र प्रतिकृति शिल्पी राहुल श्रीवास है, इनके नाम 24 घंटे लगातार तबला बजाने का रिकॉर्ड है।

गुरु पूर्णिमा के दिन विश्व-संगीत दिवस पर हार्दिक मंगलकामनायें।

अंत में कला समय परिवार की ओर से चित्रकार, नीर-योगी, नर्मदा पुत्र, हमारे मार्गदर्शक अमृतलाल वेगड़ जी, सुप्रसिद्ध गीतकार डॉ. गोपालदास 'नीरज' एवं दैनिक भास्कर के जागरूक, बदलाव के पक्षधर, निर्भय सोच के धनी सम्पादक कल्पेश याग्निक को अश्रुसिक्त श्रद्धांजलि।

- भँवरलाल श्रीवास

कला निकष

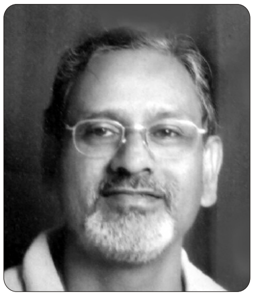

''सुर और ताल में देह को आत्मा तथा आत्मा को देह बनाने की जादूगरी है।''

यह बात मेरे जेहन से पैदा होने के कारण कुछ यूं है कि सुर, ताल और लय अगरचे सुनाई ना दे तो मौसिकी या संगीत मनुष्य के संसार से बाहर की चीज हो जाती है।

ध्वनि सिर्फ पृथ्वी के विस्तार क्षेत्र में पाया जाने वाला अजूबा नहीं है, यह ब्रह्मांडीय उपस्थिति है। यह सार्वभौमिक, सार्वत्रिक (जहां भी स्पेस है, वहां) (sovereign, universal) मौजूद है। मनुष्य की कल्पना और हकीक़त में ध्वनि के अनेकानेक गुमान और अनुभव हैं। नाद, ब्रह्म हो जाता है, अनाहत नाद। जहां गोरखनाथ, कबीर जैसी, पूरी की पूरी एक जमात सुनती है – एक हाथ की ताली।

दूसरी ओर यह भी एक सच्चाई है कि हम नाद को जानते ही कितना हैं ? वैज्ञानिकता अपने सबूतों के आधार पर दुनिया के सामने यह रहस्य खोलती है कि ध्वनि एक तरंग है, यह चलती है पर इसे चलने के लिए एक माध्यम (medium) की दरकार होती है और पैदा होने के लिए एक विजातीय या सजातीय साथी की। साथी भी कैसा! हथेली को हथेली नहीं तो दीवार भी चलेगी या धरती या कुछ भी।

मनुष्य के कंठ में स्वरयंत्र और हवा की केमेस्ट्री मिलकर ''वाणी'' का ऐसा कमाल रच चुके हैं कि आज मैं और आप गुफ्तगूँ कर रहे हैं।

नाद से वाणी तक की यात्रा में मनुष्य के स्वरयंत्र और हवा की जुगलबंद यात्रा को पूरा करने वाला यह अपना ''कान'' ही है। ''कर्ण प्रिय आवाज'' यह जुमला आये दिन जो सुनते हैं, यह इस मोहब्बताना सफ़र की आपबीती का मुकम्मल बयान है।

देह से आत्मा और आत्मा से देह बनने का करतब जानने के लिए देह से शुरू करते हैं : –

सिरा पकड़ना और कान पकड़ना इस सन्दर्भ में एक ही बात है।

स्वस्थ कान की अपनी कुछ जिस्मानी सरहदें हैं, जैसे 1. यह सिर्फ तकरीबन 20 से 20,000 हर्ट्ज़ की आवृत्तियों (फ्रिक्वेंसीज) की ध्वनि को ही सुन सकता है। 2. यह एक सेकंड में केवल 15 से 18,000 तरंगों के साथ ही न्याय कर सकता है मतलब सुन सकता है। 3. यह एक सेकंड में मात्र 15 या 16 कम्पनों से लेकर 20,000 कम्पनों को ही ग्रहण कर पाता है, यानी सुन सकने की मर्यादा।

नासा की कई खोजें इस नतीजे पर पहुंचाती हैं कि ब्रह्माण्ड बड़ा मनचला और रोमेंटिक है, लगातार ग्रह नक्षत्रों के लावण्य में डूबा अपने पूरे चौकन्नेपन के साथ सीटी बजा रहा है या किशन कन्हैया की तरह बांसुरी फूंके जा रहा है और एक अखंड धुन फ़िज़ां में गूँज रही है पर यह समूचा नाद बेचारे कान की गिरफ्त में नहीं है।

फिर भी, कान की जद में आने वाली आवाजों की अपनी एक लीला है अपना एक कौतुक। शिशु भ्रूण की अवस्था में पूरा मनुष्य होने की गठन के हवाले होता है तभी हृदय की धक्-धक् उसके कान को सक्रिय करते हुए उसकी स्मृति में संगीत के स्वाद का गर्भादान कर देती है। ब्रह्माण्ड की सीटी में एक कॉस्मिक ट्यून है – अमानुषी धुन; जो ज्ञात-अज्ञात धुनों, लयों और रागों का कुबेरी खजाना है। इस सीटी के आरोह-अवरोह अनायास नहीं हैं, इसके पीछे ब्रह्माण्ड का जो चौकन्नापन है, दरअसल वो ही कॉस्मॉस का सांगीतिक अनुशासन है। जहां अखिल व्यवस्था की सांगीतिकता का यह ''ककहरा'' 20 हर्ट्ज़ से कम और 20,000 हर्ट्ज़ से ज्यादा हमारी गणित-गणना के बाहर है वहीं हृदय-स्पंदन की सीमा अपने वामन रूप में 20 से 500 हर्ट्ज़ होती है। यानी 20 हर्ट्ज़ के संधि स्थल को लेकर ही भ्रूण मानुषिक गठन की शुरुआत करता है। कुल जमा यह कि 20 हर्ट्ज़ वह प्रतिच्छेदन (intersection) है, जहां कॉस्मिक संगीत के संपर्क में आने पर देह खुद को आत्मा बनाने की संभावना में तब्दील कर देती है।

आत्मा का देह बनने का करिश्मा तो आये दिन हम अनुभव करते हैं। मंचस्थ समर्पित गायक-वादक जब लय ताल की लहरों में सदेह डूबे हुए होते हैं तो उनकी निमग्न काया असल में जिस्म ना होकर अपने माहौल से असम्पृक्त एक रूह (soul) ही तो होती है।

जागतिक यथार्थ में, कला के रसिकों के समझ के सन्दर्भ में, अतीत के रंगमंच पर वर्तमान का प्रस्तुतीकरण ही पसंदगी तथा

नापसंदगी, मानवीयता व कला के रिश्ते, इन सबका समग्र भविष्य के साथ दिशा और दशा तय करता है। बात को स्पष्ट करूं तो कहना होगा कि वर्तमान का प्रस्तुतीकरण भविष्य में जाकर स्वयं अतीत बन जाता है और नया प्रस्तुतीकरण उस वर्तमान में उदित होता है जो कला के भविष्य की नींव रखता है पर कला के सर्जक के सन्दर्भ में कला का सिर्फ वर्तमान ही वर्तमान होता है, बस; इसीलिये निमग्नता अपने रूप, रंग तथा आकार के साथ प्रकट होती है।

संगीत के बारीक ब्यौरों में जाएं तो पता लगता है कि गीता में कृष्ण कहते हैं- ''वेदानां सामवेदोऽस्मि''।

मैं वेदों में सामवेद हूँ। बस, कृष्ण का यह कथन जतलाता है कि हमारी सहज बोध तथा प्रज्ञता की आधारभूत सामग्री चारों वेदों में निहित है किन्तु उन चार वेदों में यह सामवेद ''विशिष्टतम'' है। इसकी खासियत इसमें संगीत से सम्बंधित आधारभूत प्रामाणिक जानकारियाँ हैं। इनसे पहले की संगीत पर भारतीय मेधा की किन्हीं अवधारणाओं अथवा अटकलों के बारे में हम कुछ नहीं जानते।

सामवेद के लयात्मक शब्द-सूत्रों अर्थात मन्त्रों को ''सामानि'' कहा गया जैसे ऋग्वेद के मन्त्रों को ''ऋचा''। वस्तुत: ''साम'' शब्द गान की पद्धति के लिए इस्तेमाल किया गया। तीन स्वरों ''ग, रे, स'' में ही पहले वेद मन्त्रों का गायन होता था जिसे ''सामिक'' कहा जाता था। तीन स्वरों से पांच, फिर अंत में सात स्वरों पर जाकर यह विस्तार समाप्त होता है। वस्तुत: ''साम'' समवेत गान है और उसकी अपनी स्वरलिपि भी है जो संभवत: विश्व की प्राचीनतम सांगीतिक स्वरलिपि है। इस लिपि के काल के बारे में सांख्यिक अनिश्चितता है परन्तु वैदिक काल मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

वैसे, पश्चिमी विद्वानों तक जानकारी ना पहुँचने की गफलत से विश्व में एक भ्रामक धारणा बनी रही कि प्राचीन भारत के संगीत की कोई स्वरलिपि नहीं थी।

प्रामाणिकता के लिए हमारा पश्चिम का मोहताज होना मुझे चुभता है, सालता है, यह कहकर मेरी उनके काम की अवहेलना करने का सिराफिरापन दिखाने की मंशा नहीं है बल्कि हम आगे बढ़कर खुद नहीं कुछ कर पाए, उसकी खीज जरूर है। दरअसल यह ''पश्चिम-पश्चिम'' का जाप मुझे चिढ़ाता-सा लगता है।

इस प्रकार यह मेरी मनोग्रंथि की कसक ही थी कि मैं स्वरलिपि के प्रसंग में 'गूगल' खंगालने से खुद को रोक नहीं पाया। मेरी कोशिश में यह हाथ आया -

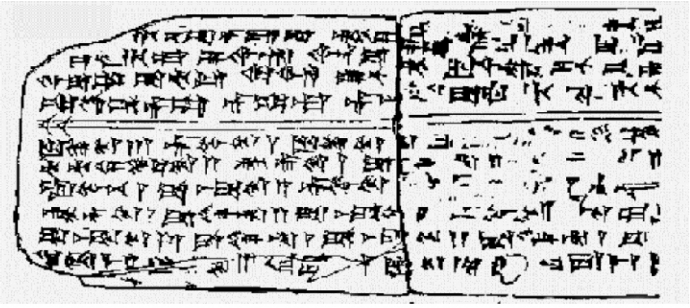

यह एक पकी हुई मिट्टी की टिकिया (clay tablet) है। यह सीरिया के उत्तरी इलाके में बसे ऐतिहासिक शहर यूगरित (Ugarit) में उत्खनन के दौरान पाई गयी। विशेषज्ञों ने इसका काल निर्धारण लगभग 1400 बी.सी. के आसपास का किया है। यह लिपि कील के आकार (कीलाकार) (cuneiform) मानी जाती है जो अन्य प्रचलित ध्वन्यात्मक (phonetic) लिपियों से अलग है। इस मिट्टी की टिकिया (clay tablet) पर हुर्रीअन लोगों का फल-उद्यानों (fruit-orchards) की महानतम पूज्य देवी निक्कल (Nikkal) की पूजा-अर्चना में स्वरलिपि में लिखा गया भजन (hymn) है। इसे दुनिया की सांगीतिक लिपिबद्ध रचना का प्राचीनतम उत्कीर्ण (खुदा हुआ) दस्तावेज माना जाता है। इस पड़ताल से इतना उभरकर जरूर सामने आता है कि उपलब्ध पुरातन साक्ष्यों के अनुसार पूरी धरती की मानुषिक गेयता देवी-देवताओं को पुकारती रही, अपनी भौगोलिक दूरी और क्षेत्रीय विशिष्टताओं के बावजूद। उस काल से ही शायद असमर्थता को प्रार्थनात्मक स्तुति में बदलकर संगीत का प्रयोजन बनाने की चेष्टाएँ आरम्भ हुईं। गायन वादन में प्रेम, करुणा, सामाजिक सरोकार (कृषि, उत्सव या युद्ध) अपने क्रमिक विकास के दौरान सम्मिलित होते चले गये। पीछे जहां तक दृष्टि पहुँचती है तो लगता है कि पृथ्वी के सभी महाद्वीपों पर मानव के स्वरयंत्र और लय वाद्यों में (ताल वाद्य नहीं) में शुरू में तीन सुर, फिर पांच और सात हुए।

संस्कृत	यूरोपियन	बिजान्टियम (रोमन-यूनानी नगर)
सा, रे, ग, म, प, ध तथा नि	Do-Re-Mi-Fa-Sol-La-Si,	Pa-Vu-Ga-Di-Ke-Zo-Ni.
षडज्, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद	/doʊ/, /ɹeɪ/, /miː, /fɑː/, /soʊ/, /lɑː/, और /tiː/	

पर यह सफ़र रुका नहीं; आखिर में, धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक समकालीन संगीत बारह सुरों की सजधज के साथ हमारे कानों में गूंजता है।

वैसे प्रधान या आधारभूत या शुद्ध स्वर सात (सा, रे, ग, म, प, ध, नि) ही हैं लेकिन तारत्व (pitch) के आधार पर पांच शुद्ध स्वरों की परछाइयों को कोमल स्वर नाम देकर शामिल किया गया। ये पांच विलक्षण सुर हैं – रे, ग, म, ध, नि ।

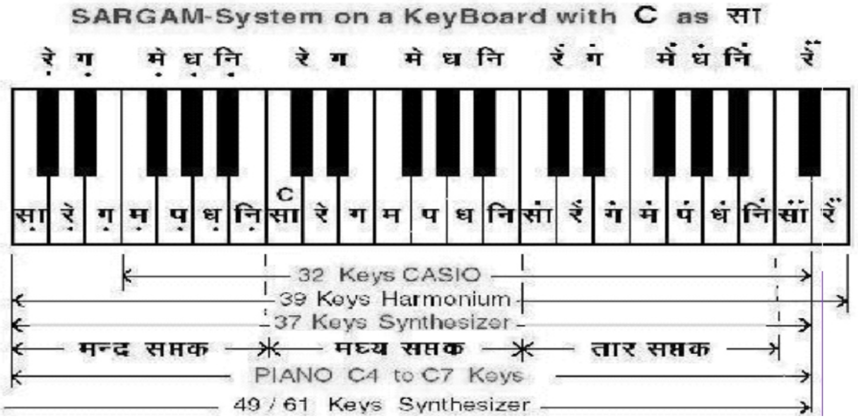

पृथ्वी के सातों महाद्वीपों पर रहने वाले लोगों में अपने अलग-अलग निवास स्थानों के कारण यदि श्रेष्ठता तथा कमतरता का सचमुच अंतर होता तो इन सभी की सात सुरों या बारह सुरों पर पहुँचने की यात्रा एक सरीखी क्यों होती ?

कारण सिर्फ इतना-सा प्रतीत होता है कि संगीत की यात्रा निर्मल आनंद की खोज में ईमानदार लोगों की गैरमज़हबी, गैरसाम्प्रदायिक तथा गैरवर्णीय यात्रा है, जिसमें छद्म पहचान के नाम पर कोई अज्ञानी आग्रह अथवा कोई हठीला दुराग्रह सक्रिय नहीं रहा।

संगीत की इस सार्वभौमिक यात्रा में सुर बड़े पुरजोर अंदाज़ में एक गुजारिश करते नज़र आते हैं कि धरती नामक इस उपग्रह पर अक्षांश और देशांश से बेपरवाह, उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव के बीच का खालीपन और अलगपन महज एक हौआ (chimera/fallacy) है, वरना हम काले-सफ़ेद, ठिंगने-ऊंचे, मूढ़-बुद्धिजीवि, पूरबी-पच्छिमी, वाम-दक्षिणी सबके पास एक सा स्वरयंत्र और एक सा कान है, सबका हर्षोल्लास एक है।

एक वैज्ञानिक तथ्य-सी लगने वाली खुशफहमी की कौंध जरूर मेरे जेहन में है कि इस संगीत यात्रा में सामवेद का सामिक गान इन तीन सुरों से शुरू हुआ ग, रे, स। दिलचस्प बात यह है कि यह अवरोही क्रम है ऊपर से नीचे उतरते हुये।20,000 हर्ट्ज़ की तरफ ना होकर 20 हर्ट्ज़ की दिशा में। 20 हर्ट्ज़ के बाद क्या? संगीत में मगन हुए लोग बता सकते हैं कि संगीत बंद होने पर भी मन में वह गायन-वादन जारी रहता है । बस, उस अध्वनि में ही 20 हर्ट्ज़ से कम आवृत्ति की प्रतिध्वनि है, यहीं पर मानुषिक संगीत से कॉस्मिक संगीत में जाने के खुले द्वार-पट हैं, उस पार हो जाना यानि कॉस्मिक म्यूजिक में हो जाना। नासा इसे spooky sound खौफनाक आवाज कहता है शायद 20,000 हर्ट्ज़ के ऊपर की तरंगों के कारण। पर संगीत के दीवानों, कॉस्मिक म्यूजिक में 20 हर्ट्ज़ के नीचे का भी नाद है और मगन होने के उच्चेतर सोपानों पर यह करिश्मा घटता है तो खुद-ब-खुद लगता है

''सुर और ताल में देह को आत्मा तथा आत्मा को देह बनाने की जादूगरी है ।''

- लक्ष्मीकांत जवणे
laxmikantjawney@gmail.com
M- 099936 22228

आलेख

बिसरत नाहीं : राग-संगीत का बह बेजोड़ ख़जाना

क्या बिना किसी प्रतिभा, बिना किसी प्रशिक्षण, बिना किसी प्रेरणा-प्रोत्साहन के भी कोई आदमी संगीत-व्यसनी और संगीत-रसिक बन सकता है? इतना ही नहीं, संगीत से इतर जो साहित्य नाम की कला है- कविता और नाटक खासकर, उसमें भी जो सांगीतिक गुणवत्ता-स्वर और लय से जुड़ी हुई- स्वर और लय से एक रस-अनिवार्यत: रची-बसी होती है, उसके प्रति भी एक असामान्य संवेदनशीलता कमा सकता है?

मुश्किल लगता है ना, उक्त प्रश्न का सकारात्मक प्रत्युत्तर दे सकना? लेकिन यह मनमाना सोच या अतिश्योक्ति न होकर सीधा-सादा अनुभवसिद्ध तथ्य है। और इसका सारा श्रेय हमारे उस नगर के वातावरण में सहज ही व्याप्त उस संगीतमयी संस्कृति को मंदिरों में और संगीत के यदा-कदा आयोजित होने वाली सार्वजनिक आयोजनों में ही नहीं, बल्कि घर-घर में निहायत स्वत: स्फूर्त ढंग से धूम मचाये रहने वाली रामलीला और होली की कई-कई दिनों, हफ्तों, बल्कि पूरे माह चलने वाली सर्वथा अनौपचारिक बैठकों-महफिलों को जाता है। रामलीला की धूम तो ग्यारह दिनों तक रहती थी, किन्तु उसकी तैयारी-यानी पूर्वाभ्यास-कम से कम माह भर पहले से आरम्भ हो जाता था-जिसके मुख्य या गौण पात्र-अभिनेता ही नहीं, हम जैसे अनाड़ी, मगर उत्साही उत्सुक श्रोता-दर्शक भी साक्षी और रसिक की भूमिका निभाने के लिये सहर्ष आमंत्रित हुआ करते थे-बशर्ते, हमारी उपस्थिति विघ्नकारी न हो। एकमात्र अर्हता, जो अनिवार्य अर्हता थी- अघोषित रूप से-वह थी- तल्लीनता और दिलचस्पी सचमुच की। दिखावटी या छिद्रान्वेषी मानसिकता से सर्वथा मुक्त।

रामलीला 'खेला' है, नाटक है। 'खेला' है, इसीलिये, इसी बूते मानव-जीवन की सबसे प्रामाणिक और गंभीरतम अनुकृति और प्रस्तुति भी। संवाद और दृश्यबंध और अभिनय भर काफी नहीं किसी जीवन-प्रसंग और उसके सहचारी भावों की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति के लिये। राग-संगीत का सहारा लिये बिना वह प्रसंग, वह वस्तुस्थिति या मन: स्थिति कैसे सजीव मूर्त सजीव ढंग से संप्रेषित हो सकती है, इसका अविस्मरणीय सबक हमें 'रामलीला' ने सिखाया। विधिवत जो दीक्षा होती है- होनी चाहिये - संगीत की- वह हमें कहाँ सुलभ थी? मगर धन्य है, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रगट हुए हमारे उस पुरखे को, जिसने यह रामलीला नाटक (ऑपेरा) रचा- जिसमें मुख्य आधार तुलसीकृत रामायण का होते हुए भी संवाद,गीत, सब खड़ी बोली हिन्दी में हैं; और पद्यांश सारे के सारे क्लासिकी राग-रागिनियों में निबद्ध। दोहा-चौपाइयों समेत। कौन-सा पद्य या गीत किस राग में प्रस्तुत किया जाता है, सब कुछ बाक़ायदा पूर्वनिर्दिष्ट। प्रशिक्षकों और अभिनेताओं का तो कहना ही क्या, हमारे जैसे कच्चे किशोर श्रोताओं-दर्शकों को भी ऐसा पक्का प्रसाद इस नाट्य-संगीत का अनायास मिल जाता रहा, कि हम कम से कम दस मुख्य रागों को तो धुन छिड़ते ही तत्काल-तत्क्षण पहचान लिया करते। यह पहचान इस क़दर पक्की-टिकाऊ साबित हुई कि कोई आधी सदी से अपने नगर की इन सांस्कृतिक गतिविधियों से बिछुड़े रहने के बावजूद आज दिन तक भी वह क्षीण या धूमिल नहीं पड़ी है। पूर्ववत् हमारे कंठ और कर्णकुहरों में रची-बसी हुई है।

- पद्मश्री रमेशचन्द्र शाह

अब आज जब याद कर ही रहे हैं उस माहौल को इस निमित्त से, इतने अंतराल से, तो देखें तो सही क्या-क्या और कितना कैसा याद आता है? क्लासिकल राग-रागिनियाँ ही नहीं, लावनी और ग़ज़ल....और....और भी जाने क्या-क्या। कभी-कभी कोई अभिनेता तत्काल उपज यानी 'इम्प्रोवाइज़' भी कर लेता- तात्कालिक स्फूर्ति और उमंग की 'उपज'। आखिर क्या कारण है कि इतने अरसे बाद भी- उन धुनों, उन राग-रागिनियों की पहचान यथावत् और अचूक बनी हुई है? जबकि कायदे से हमने सीखा तो कुछ भी नहीं था।

इसका कारण बस यही और इतना ही समझ में आता है कि वह धुन, वह राग-उस भावदशा या वस्तुस्थिति का सौ टंच भावात्मक समतुल्य होता था। किसी और धुन या राग-संयोजन में उसके ढलने और साकार होने की कल्पना ही नहीं होती थी। जैसे, उदाहरण के लिये वनवास के दौरान प्यास से विकल सीता के लिये जल की खोज में निकले लक्ष्मण का यह गाना-

''कोई तो बता दे जलनीर, सिया प्यासी है
ऐसी महारानी जल बिनु तड़पे,
उलट गईऽऽऽ तकदीर। सिया प्यासी है।''

यहाँ महज इन शब्दों से वो बात कदापि नहीं बन सकती थी, जो कि जिस राग में ये पंक्तियाँ गायी गयी हैं- उसके जरिये बनती है। इस लेख के लेखक ने- जो उस समय सिर्फ नौ या दस वर्ष की आयु का बालक था- एक समूचे जन-समुदाय को इस गाने को सुनते हुए इस कदर भावाविष्ट होते देखा है- जिसका वर्णन करना उसके लिये आज भी असंभव है। किसकी करामात थी वह? किसकी विभूति थी? शब्द की? अभिनय की? निश्चय ही, संगीत की। संगीत से वियुक्त उन शब्दों या शब्दार्थों की भला क्या हैसियत थी जो- आज भी, हाँ, आज इस क्षण भी- मन को वैसी ही विह्वल भावदशा में निमग्न कर दे! 'रसदशा' और कहते किसे हैं। इस करुण रस का ही

एक और अनुभव- इसी रामलीला के माध्यम से- जब लक्ष्मण मेघनाद की शक्ति से मूर्छित-मरणासन्न अवस्था में-पड़े हैं, किन्तु, गा रहे हैं। क्योंकि यह विदाई, यह जुदाई- इसकी मर्मान्तक वेदना और किसी तरह अभिव्यक्त नहीं की जा सकती थी। अभिव्यक्ति तो चाहिए ही चाहिए। जीवन और मरण से परे-दोनों से स्वतंत्र- दोनों के मर्म की पराकाष्ठा को और किस तरह संप्रेषित किया जा सकता? शब्द गौण है, शब्द अपने सारे अटपटेपन के बावजूद उनसे परे केवल इस राग-संगीत में ही इस संबंध की, इस स्थिति की चरमावस्था को, उसकी दारुण अन्तिमता को संप्रेषित कर रहे हैं तो किस बूते? केवल, केवल मात्र उसके समतुल्य समकक्ष राग-संगीत की संरचना से-

''प्राण निकलते हैं अब भय्या! राम! राम! राम! ।। भैया।।
हा, अन्त समय अब आया
सेवा न करने पाया
कीजो क्षमा अब मोहे प्रिय भय्या!''
राम! राम! राम!

और, राम का प्रत्युत्तर भी उसी धुन, उसी राग में संभव हो सकता था-

''मैं रण में अकेला तड़पूँ, भैया! बोल, बोल, बोल।...''

चरम हताशा के इस क्षण में ही चमत्कार होना है। संजीवनी बूटी लेकर हनुमान जी को प्रगट होना है और सुषेण बैद्य का निदान और इलाज भी कारगर होना ही है। कमाल, कि यह सब इस संगीत के नाद-सौन्दर्य के जरिये ही दर्शकों तक पूरा का पूरा संप्रेषित होता है।

और... करुण रस ही क्यों, कौन-सा ऐसा रस है, जिसकी निष्पत्ति इस अनूठे ऑरेरा राग-संगीत के द्वारा नहीं हुई हैं? हमारे अल्मोड़े के इस रामलीला नाटक में? हर दिन इस लीला का एक नये भाव-जगत को उद्घाटित करता है- जहाँ कई लोकों के सीमान्त आपस में घुल-मिल जाते हैं- हर दिन एक नये ही लोक को-एक नये ही भाव-जगत को, नये ही घटना-क्रम को प्रत्यक्ष करता है। और इसमें कंठ और कानों की भूमिका आँखों से कम महत्व की नहीं बल्कि अधिक ही जान पड़ती है। अभी इस क्षण भी उस अनुभव का स्मृत्याह्वान करते हुए उस महानाटक का 'दृश्य' नहीं, 'श्रव्य' ही चेतना पर छाया हुआ है। पुस्तकाकार प्रकाशित था यूँ तो यह समूचा नाटक। पर हम लड़कों के लिये सुलभ नहीं था; सिर्फ बड़ों के लिये था। फिर भी, इतना तो हमको भी पता चल ही गया था कि जिन गानों का इस कदर नशा चढ़ा हुआ है हम पर, वे सभी किसी न किसी पक्के राग से जुड़े हुए हैं। उन्हें सुन-सुनकर ही हमने उन्हें पहचानना और गाना भी सीख लिया है : भैरव, भैरवी, यमन, आसावरी, बिहाग, मालकौंस, तिलक कामोद, खमाज, जैजैवन्ती, दुर्गा, भूपाली इत्यादि....। जिनकी स्वर-लहरियाँ उनसे लगे-लिपटे नाटकीय जीवन-प्रसंगों के साथ इतने बरस बाद भी मन में यथावत् गूँजने लगी हैं अनायास। शब्दों से कहीं ज्यादा, कहीं गहरे उन धुनों में साकार प्रत्यक्ष हो उठती हैं वे छवियाँ और वे स्थितियाँ....चाहे वे अयोध्या से वनवास के लिये प्रस्थान करती, अपने परम आत्मीय अयोध्यावासियों को आश्वस्त करती राम-सीता और लक्ष्मण की आकृतियाँ हों, चाहे धनुष-भंग से क्रुद्ध परशुराम का गर्जन-तर्जन और लक्ष्मण से नोक-झोंक का रौद्र-हास्य समन्वित प्रसंग हो, चाहे पंचवटी में शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने आये खर-दूषण का राम-दर्शन से उपजा विस्मयविमूढ़, सुध-बुध बिसरा देने वाला आह्लाद हों।

''सब मिलकर रहना यहाँ पर, हम बन जाइयाँ
नर हो कि नारियाँ, रहो सुखारियाँ
अब तो हम बन जाइयाँ।। सब मिलकर...।।''

×××××××××

''बता दे ऐ जनक राजा, ये शिव धनु काने जर नीरा?''

×××××××××

''हैरान हूँ मैं देखके, इस छवि को, क्या करूँ ?
नकटी की नाक क्या कटी, तक़दीर खुल गई''

म.प्र. कला परिषद (तब 'भारत भवन' का अस्तित्व नहीं था) की पहल से देश की कई जगहों, कई क्षेत्रों की रामलीलाओं का यहाँ भोपाल में मंचन देखने-सुनने का अवसर मिलता रहा प्रतिवर्ष। सबका अपना निराला-विशिष्ट रंग-ढंग। किन्तु बिना किसी पक्षपात या पूर्वग्रह के हर बार यही लगता रहा, कि 'ऑपेरा' जिसे कहते हैं पश्चिम में, उस दृष्टि से, और शास्त्रीय एवं लोकसंगीत दोनों में अत्यन्त निराले और मौलिक कल्पना-प्रवण प्रयोग की दृष्टि से भी अपनी कुमाउंनी रामलीला का कोई जवाब नहीं। काल-गति किसी को नहीं बख्शती-सब कुछ बदलता- जीर्ण होता रहता है। किन्तु, जाने क्या बात है कि अपना अल्मोड़ा अद्यावधि अपनी इस विरासत को जैसे-तैसे अक्षुण्ण रखे हुए है। इस निरन्तरता और अक्षय ताज़गी का रहस्य उस 'संगीत' में ही अन्तर्निहित होना चाहिए- ऐसा मुझे जिस तरह तब लगता था, उसी तरह आज भी लगता है। 'हुक्का क्लब' उर्फ 'लक्ष्मी भंडार' के नाम से प्रसिद्ध मेरे अपने मुहल्ले में एक सदी से भी अधिक समय से सक्रिय चली आ रही यह संस्था अपनी बैठकी रामलीला के लिये विख्यात रही।

दरअसल इन लड़कों को अनायास अनजाने ही राग-संगीत की लौ लगाने, तथा उसकी अनूठी समृद्धि में अनायास-अनजाने ही दीक्षित करने का श्रेय तो सर्वप्रथम उसी बैठकी रामलीला को यानी सांगीतिक संरचनावाली लीला को है। इधर कई वर्षों से वह संस्था बाकायदा खुले मैदान में मंचन करती है और घर-बाहर सर्वत्र धूम मचा चुकी है। वास्तव में तो उसी को श्रेय जाता है- व्यापक राष्ट्रीय स्तर पर अल्मोड़े की रामलीला का प्रतिनिधित्व कर उसे जनमानस में प्रतिष्ठित करने का। युवतर पीढ़ियों को भी प्रशिक्षित करके उस अपनी गौरवशाली परम्परा को महज 'नॉस्टेल्जिया' में सिकुड़ जाने से बचाने का भी। हालांकि 'नास्टेल्जिया' का जो पर्याय

हमारी बोली में प्रचलित है 'नराई'- वह 'नेगेटिव' बिल्कुल नहीं, 'पॉज़िटिव' ही है।

रामलील ही नहीं, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के संस्कार की जड़ें खेल-खेल में ही हमारे कच्चे संवेदनशील कानों और किशोर मन में जमा देने वाली होली की बैठकें भी हमारे नगर में घर-घर में हुआ करती थीं और उसमें भी सर्वाधिक जबर्दस्त भूमिका इसी 'हुक्का क्लब' की होती थी। माह भर पहले से- कहना चाहिये- बसंत पंचमी से ही यह सिलसिला शुरू हो जाता था। 'काफी' के कितने प्रकार- कैसी-कैसी अनूठी बन्दिशें इस राग की (अन्य रागों की भी-यों तो) आज भी फागुन लगते ही, बसंत ऋतु आते ही हमारे भीतर गूँजने लगती हैं-मन बरबस ही विकल-उत्कंठित हो उठता है फिर से उसी बचपन के आश्चर्य-लोक में उड़ जाने को। क्या कमाल की बात है कि वही एक राग, वही बन्दिश अलग-अलग कंठों से उचारी जाकर किस कदर अलग-अलग प्रभाव छोड़ती है! तब कहाँ ऐसा चलन और ऐसी सुविधा थी कि उन कंठ-स्वरों को- उन एक-दूसरे से सर्वथा विलक्षण और अलग ही पहचानी जा सकने वाली अदाओं को 'रिकार्ड' करके सुरक्षित कर लेने की! पर.... यह हमारी 'स्मृति' क्या-क्या गुल नहीं खिलाती- क्या-क्या नहीं सहेज रखती भीतर ही भीतर, कि हमें पता तक नहीं चलता उन छुपी हुई विधियों का! लो! यह किसका कंठ स्वर गूँजने लगा कानों में? यह तो शिवलाल वर्मा जी राग दुर्गा की कोई बंदिश सुना रहे हैं न? हाँ, वही तो! आखिर क्या कारण है कि बीसियों कंठों से सुना यह राग 'दुर्गा' क्यों एक इसी कंठ से इस क़दर अनोखा बनकर पेश होता है हर बार? और.... ये तारी मास्टर साब? है कोई जवाब इनकी होली गायकी का? इनकी 'जंगला काफी' और जाने किन-किन बन्दिशों का? अरे है क्यों नहीं जवाब? भला जवाहरलाल साहजी के बिना क्या कोई महफिल सज सकती है होली की? मगर वही क्यों? और भी तो एक के बाद एक कंठ स्वर गूँजने लगे हैं। अभी तुरन्त नाम भी नहीं याद आ रहे सबके; पर क्या करना है नाम से? एक हो तो एक कहो- यहाँ तो पूरा बाजार, शहर का हर मुहल्ला ही एक से एक गवैयों-बजैयों से भरा पड़ा है। किसी की किसी से होड़ नहीं; परन्तु अपनी-अपनी खास अदायगी में सभी एक से एक बढ़कर। और, किसी की जगह कोई नहीं ले सकता। नाम की भी महिमा है अपनी जगह, बेशक। मगर उससे भी परे, यह एक समूचे समुदाय की पीढ़ी-दर-पीढ़ी बरकरार चली आ रही स्वर-संपदा है जिसमें सभी का बराबरी का साझा है। जो हमें रमा सकती है, डुबा सकती है सबको। इन जानी-पहचानी शख्सियतों के जरिये, और उनके बावजूद भी एक निवैयक्तिक भाव, बल्कि 'महाभाव' में।

यह उसी महाभाव का प्रताप है, उसी की विभूति है, कि हमारे जैसे अनाम-अकिंचन-'सकल कला सब विद्याहीनू' लड़के भी अपने को 'कुछ' क्या, बहुत-कुछ समझने लगे। बाहर की बेरहम दुनिया से पग-पग पर दुत्कारे जाते हुए भी अपने भीतर चुपचाप दाखिल हो गये इसी संगीत के 'अक्षय पात्र' के बूते अपनी और अपने साथ अपने ही जैसे औरों की भी भूख-प्यास की तृप्ति का आश्वासन और साधन भी पाते रह सके। उस आत्म-विश्वास का भी पता पा सके-उसमें यत्किंचित् प्रतिष्ठित भी हो सके, जो केवल और केवल मात्र इस देश और जाति के प्राणों में रचा-बसा हुआ संगीत और उसी से जुड़ा काव्य और नाटक ही दे सकता था-दे सकता है, आज भी। और, जब मैं 'संगीत' शब्द का उच्चारण कर रहा हूँ तो मेरे भीतर उस लोक संगीत के भी सैंकड़ों-हजारों झरने मचलने-किलकने लगे हैं, जो मैंने अपने घर, नगर और उससे लगे ग्रामीण क्षेत्रों में सुने और जिसमें स्त्री-कंठों का भी उतना ही गहरा योगदान था जितना पुरुष-कंठों का। संगीत कार्यालय, हाथरस से निकलने वाली संगीत की एकमात्र पत्रिका 'संगीत' का वह विशेषांक भी मैंने तभी पढ़ा, जिसमें छपे कुमार गंधर्व के लेख की अमिट छाप मेरे मन पर आज भी उसी तरह अंकित है। एक बार कुमारजी को जब मैंने उन्हीं के घर में बैठे-बैठे यह बात बतायी तो ये विस्मयाभिभूत हो गये। कहने लगे- ''अरे! यही तो एकमात्र लेख मैंने लिखा हैअपने जीवन में- जाने कैसे लिखा गया मुझसे।'' हाँ, तो उस लेख को पढ़कर ही मेरी समझ में आया था कि मेरे घर में यदा-कदा पधारने वाली 'गिदारी आमाओं' का 'शकुनाखर' गायन सुनते हुए मुझे हर बार क्यों रुलाई-सी छूटने लगती है? गहरे आनंद की रुलाई। बहुत बाद में, जब कर्नाटक संगीत से इन कानों की पहचान हुई तो लगा, जैसे भीतर किसी अतल से उसी अपनी 'गिदारी आभा' का ही कंठस्वर फूट रहा है।

प्रिय पाठको! यह नराई-छाप लेख सुरमा के मुँह की तरह फैलता न चला जाये, इस डर से मैं यहीं तुरन्त इस पर पटाक्षेप कर देना चाहता हूँ। लेकिन 'मधुरेण समापयेत्' की तर्ज़ पर। विशुद्ध हास्यरस के एक प्रकरण से। 'संगीत' पत्रिका आखिर हास्यारसावतार काका हाथरसी के ही दिलोदिमाग की उपज ही न थी! तो.... क्यों न उसी पर तान टूटे। उन दिनों आकाशवाणी में क्रांति की तरह धूम मचाते हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की नये सिरे से प्रतिष्ठा हो रही थी। स्वर्ण-युग था वह शास्त्रीय संगीत और उसके कर्णधारों का। तो काका ने सोचा होगा-क्यों न उसी की सान पर अपने हास्य-व्यंग्य की धार पैनी की जाय! तो लिख ही मारा उन्होंने। क्या? सुन लीजिये यह भी : चेतावनी के मुर की तरह.... अभी, तुरन्त -

''ख़त्म करो दस मिनट में/ गाना तुम तत्काल
एक ग़ज़ल अरु साथ में/ दरबारी का ख्याल।
दरबारी का ख्याल, देर नहिं होने पावे
मेरे इशारे पर फौरन ही 'सम' आ जावे।
कह काका कविराय, क्या करे दीन गवैया?
हाय रेडियो! हाय पेट! और....हाय रुपैय्या।
इत्यलम्!''

न्यू मार्केट, भोपाल (म.प्र.) ■

आलेख

भारतीय चित्र कला में राग माला

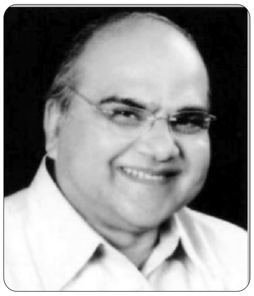

– नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

भारतीय लघु चित्रों में राग माला के अंकन भारतीय चित्रकला की विलक्षण परंपरा ने यह सिद्ध किया है कि ध्वनि भी रूपांतरित हो सकती है, स्वर भी दृश्यमान हो सकते हैं और राग भी रूप में रूपांतरित हो सकते हैं। इस तथ्य का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है हमारी राग-रागिनियों के अंकन की परंपरा।

यह प्रयोग हमारे देश में ही हुआ जहां राग चित्रित हुए। पश्चिम में ऐसी कोई परंपरा नहीं रही। बीथोवन और मोजार्ट के संगीत को यहां रूप नहीं मिला जबकि भारत में तानसेन के मेघमल्हार को चित्रित किया गया। पश्चिम में यद्यपि स्वरों के अंकन की परंपरा है लेकिन वह इस रूप में नहीं है जैसी कि भारत में है। राग माला का आशय है रागों की माला। हमारे यहां मुख्य रूप से खेमकरण और हनुमान के राग संयोजन हैं। मुख्य राग 6 हैं फिर इनकी रागिनियां हैं। हमारी परंपरा में राग पुत्र, राग वधू की भी अवधारणा है। 6 मुख्य राग हैं भैरव, हिंडोल, दीपक, मेघ, मालकोंस तथा श्री।

राग शब्द संस्कृत की रंज धातु से बना है जिसका अर्थ है रंगना। इसका आशय है ऐसी रचना जो मनुष्य के मन को आनंद से रंग दे। चित्त का यही रंगा जाना राग है। वैसे राग का प्राचीनतम उल्लेख सामवेद में है, किन्तु इसका प्रथम प्रयोग वृहद्देशी नामक ग्रंथ में है। प्रत्येक राग का अपना व्यक्तित्व है जिसका संबंध समय, ऋतु व रस से है। प्रत्येक राग का अपना प्रधान स्वर है, उसके अपने नायक न नायिका हैं तथा उसका अपना प्रभाव है। राग का मूल रूप हिन्दुस्तानी संगीत के बिलावल थाट में माना गया है। राग के इन समस्त पक्षों पर विस्तार से हमारे विद्वानों ने विचार किया है तथा गायकों ने अपनी गायकी में इनके प्रयोग किए हैं। इस संबंध में राजा मानसिंह तोमर का 'मान कुतुहल', तथा तानसेन का 'बुधप्रकाश' नामक ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं। राग के इस शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य पर विस्तृत विवरण देना लघुचित्रों के संदर्भ में अभीष्ट नहीं है। इसलिए राग के अंकन के संबंध में संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। रागों का सर्वप्रथम अंकन 15वीं सदी में जैन ग्रंथ कल्पसूत्र में मिलता है। इसके पश्चात के अंकन उन भित्तिचित्रों के हैं, जिन्हें 16वीं सदी में ओरछा के महाराजा बीर सिंह जूदेव ने अपने महल की भित्तियों पर उत्कीर्ण करवाया था। यह परंपरा थमी नहीं तथा मेवाड़ के चावंड में जो महाराणा प्रताप की राजधानी थी 1605 ईसवी में राग माला चित्रित की गई। इसके बाद 1607 में मेवाड़ के ही गिलूंड में एक और राग माला चित्रित की गई। 17वीं सदी में लौड़ राग माला के चित्र बीकानेर में बने। बूंदी की सुप्रसिद्ध चित्रमाला भी इसी समय चित्रित हुई। इसे चुनार राग माला के नाम से जाना जाता है।

यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भारतीय लघु चित्रों में राग-रागिनियां उस तरह चित्रित नहीं हुईं, जिस तरह उन्हें गाया जाता है। उन्हें सांकेतिक रूप से चित्रित किया गया। उदाहरण के रूप में राग हिंडोला का चित्रण यदि किया गया तो झूले पर झूलती नायिका को चित्रित कर दिया गया। राग बसंत में कृष्ण को गोपियों के साथ नृत्य रत चित्रित किया गया तथा राग मेघ को अंकित करते समय आकाश में बादल अंकित कर दिए गए। पशु, पक्षी, फूल और प्रकृति के तमाम उपादानों को इनके अंकन में प्रयुक्त किया गया।

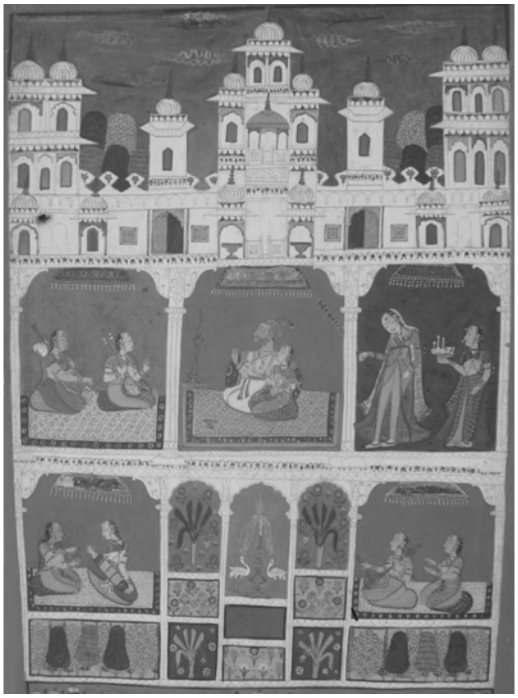

रागिनी दीपक बुंदेलखंड कलम 18वीं सदी व्यक्तिगत संग्रह

रागों के इस चित्रण में अनेक ऐसे चित्र बनाए गए जिनमें चित्र के ऊपर राग की विशेषताओं को व्यक्त करने वाले दोहे अंकित किए गए। ऐसे भी अनेक राग चित्रित हुए, जिनका कोई संदर्भ ग्रंथों में नहीं था, जैसे तुनुक, मानवती, गंभीर, सेंधवी,

मंडा, भास्कर, हरसा और सोलामारू।

इन रागों के अंकन में चितेरे ने स्वतंत्रता ली तथा अपने भावों को भी अभिव्यक्ति दी। उसने रागों के ऐसे चित्र भी बनाए, जो परंपरागत रूप से बनाए जाने वाले रागचित्रों से भिन्न थे। जैसे राग टोड़ी के चित्रण में परंपरागत रूप से हिरण नायिका के साथ चित्रित होते हैं। सभी शैलियों में ऐसे चित्र बने लेकिन विदर्भ के कलाकार ने राग टोडी के चित्रण में हिरण नहीं बनाए।

इस प्रकार के अनेक प्रयोग हुए, इसलिए आगे चलकर ऐब्लिंग नामक प्रख्यात शोधकर्ता ने एक श्रेणी चित्रकारों की अलग बनाई जो हनुमत और खेमकरण की परंपरा से भिन्न थी।

राग और रागिनियों के ये अंकन मध्यकाल की प्राय: प्रत्येक शैली में बने। राजस्थान चार अंचलों में विभक्त है, ये हैं मेवाड़, मारवाड़, ढूँढार और हाड़ौती। इन अंचलों की प्राय: सभी कलमों में राग व रागिनियों के अंकन हुए। उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जयपुर और कोटा तथा बूंदी से लेकर झालावाड़ तथा अलवर तक राग चित्रण की परंपरा अप्रतिहत रूप से चली। राजस्थान के ठिकानों में राग-रागिनियां चित्रित हुईं।

इसी प्रकार पहाड़ की कलमों में कांगड़ा, गुलेर, मानकोट तथा चंबा और बसोहली से लेकर नूरपुर जैसे छोटे ठिकानों में ये चित्र बने। इनके अलावा मालवा अंचल में 17वीं सदी में इनका अंकन हुआ तथा राघौगढ़ जैसे छोटे राज्य में ऐश्चरयाजी जैसी विदूषी रानी ने रागों के अंकन को जीवंत कर

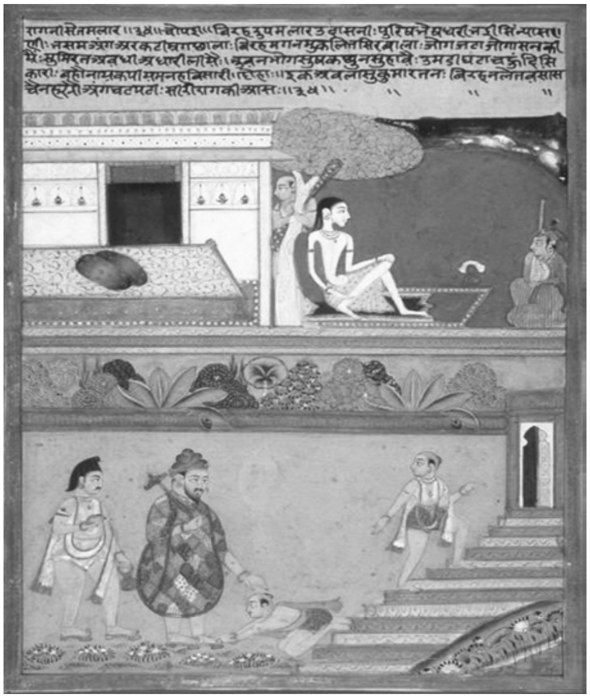

रागिनी सेत मलार ओरछा 18वीं सदी व्यक्तिगत संग्रह

दिया। मध्यकाल और उत्तरमध्यकाल में प्राय: समूचे भारत में राग व रागनियां चित्रित हुईं।

ये अंकन मुख्यत: नायक-नायिका केन्द्रित अंकन थे जिनके केंद्र में थे राधा और कृष्ण। उनकी अनूठी भंगिमाओं के सागर में आकंठ युग डूब गए और उन्हें स्वर से स्वरूप तक में अमर कर दिया। राग माला के ये अंकन हमारी अनमोल धरोहर हैं।

पूरे विश्व के कला संग्रहालयों और व्यक्तिगत संग्रहों में ये सुरक्षित है। राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में नरसिंहगढ़ की अनूठी मालवा शैली की राग माला है, जिसे 1680 ई. में माधोदास और उसके शिष्यों ने बनाया था। राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, जगदीश एवम् कमला मित्तल संग्रहालय मुंबई और आशुतोष संग्रहालय कोलकाता से लेकर विक्टोरिया एंड अल्बर्ट संग्रहालय लंदन, ब्रिटिश संग्रहालय लंदन, अश्मोलियन संग्रहालय ऑक्सफोर्ड से लेकर लॉस एंजिलिस काउंटी संग्रहालय, मेट्रोपॉलिटिन संग्रहालय न्यूयॉर्क और एडवर्ड बिन्नी थर्ड के संग्रह से लेकर विश्व के तमाम व्यक्तिगत संग्रहों और कला वीथिकाओं में ये अंकन संग्रहीत हैं।

इस महान कला विरासत से रूबरू होना स्वर को स्वयं में समेट लेना है।

स्वरों के ये स्पंदन कभी थमें नहीं, यही प्रत्येक भारतीय की अभिलाषा होनी चाहिए।

85, इन्दिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के पास, केसरबाग़ रोड,
इन्दौर-9 (म.प्र.) मो.- 9425092893

आलेख

बांग्ला देश में जन्मे उस्ताद विलायत खां किन्तु उनका सितार पूरी तरह भारतीय था।

पं. विजयशंकर मिश्र

सन् 1928 में गौरीपुर (अब बांग्ला देश) में जन्मे विलायत खां का नाम भले ही विलायत था, किन्तु उनका सितार पूरी तरह भारतीय था... अंतर्मुखी, रूमानी और कुछ फैशनेबल भी, लेकिन अपनी जड़ों से मजबूती से जुड़ा। विलायत खां महान संगीतज्ञों के परिवार से थे। इनके प्रपितामह साहबदाद खां, पितामद इमदाद खां, पिता इनायत खां महान कलाकार थे। लेकिन विलायत खां ने अपने सितार में अपना रंग भरा, फूलों का रंग, इसीलिए उनके सितार के हर रंग से एक अलग तरह की खुशबू आती थी।

जिस समय सितार ध्रुवपद अंग से बजता था, उस समय साहबदाद खां ने सुरबहार और सितार पर खयाल और ठुमरी अंग की अवतारणा के विषय में सोचा। वह अच्छे गायक भी थे। और सारंगी, सितार तथा सुरबहार वादक थे। उनकी इस सोच को उनके पुत्र इमदाद खां ने सफलता पूर्वक आगे बढ़ाया, और यह वादन शैली उनके नाम के साथ जुड़कर 'इमदादखानी बाज' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमें अपना स्वप्निल स्पर्श देकर विलायत खां ने इसे पूरी दुनिया में लोकप्रिय किया। यही कारण है कि आधुनिक काल के कई लोग इसे विलायत खां का ही सर्जन मानने लगे हैं।

यह सच है कि इस शैली के सर्जक विलायत खां नहीं थे, लेकिन इसे जिस अंदाज में उन्होंने पेश किया, यह अंदाज पूरी तरह उनका था। गले की चीज को हाथ में उतारने के लिए उन्होंने गले और हाथ के बीच के हिस्से दिल का बहुत सफल उपयोग किया। बजने वाले सितार को गंवाने के लिए खां साहब ने अनथक प्रयास किए क्योंकि सारंगी और वॉयलिन के विपरीत सितार में मिजराब के प्रहार के कारण स्वरों की निरंतरता भंग होती है, आस टूटती है। अत: अपने सितार को सफलता पूर्वक गंवाने के लिए खां साहब ने कई अभिनव प्रयोग किए। उन्होंने न केवल लंबी मींड़ों और फिरत की तानों द्वारा वादन तकनीक, बल्कि सितार को भी काफी बदल दिया। बाज के दो और तीन नंबर के गेज के तारों के स्थान पर पांच नंबर का मोटा तार जोड़कर अधिक गमक और आस को संभव किया। उन्होंने सितार की तबली को मोटा और मजबूत करने के साथ-साथ ब्रिज की ऊंचाई को भी बढ़ाया। पीतल के पर्दों के स्थान पर जर्मन सिल्वर के मोटे पर्दों को लगवाया, सितार के जोड़ और बांधने की शैली में भी परिवर्तन किया। और यह सब कुछ इसलिए किया कि वह जो बजाना चाहते थे उसे सफलता पूर्वक बजा सकें।

जिस तरह आकाश से उतरती गंगा के लिए शंकर को अपनी जटा खोलनी पड़ी थी, उसी तरह अपने पूर्वजों की परिकल्पना को साकार करने के लिए विलायत खां को पारम्परिक सितार बदलना पड़ा था।

उस्ताद विलायत खां ने ही खयाल और ठुमरी अंग की रचनाओं को पहली बार पूरी मार्मिकता, भाव प्रवणता और अपनेपन के साथ सितार पर अवतरित किया। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि गायकी अंग की बंदिशों को जब उन्होंने सितार पर उतारा तो कुछ इस अंदाज में कि किसी को यह एहसास न हुआ कि यह गायकी अंग की चीज़ है, जिसे तंत्र वाद्य पर बजाया जा रहा है। इसीलिए विलायत, खां विहाग, देस, दरबारी, जोगिया, नंद और इन जैसे उन कितने ही रागों को सफलता पूर्वक बजाते रहे, जिनसे अनेक तंत्रकार कतराकर निकल जाते हैं, क्योंकि इन्हें वही बजा सकता है, जो स्वयं गा भी सकता हो।

उस्ताद विलायत खां जिस तरह की तानें, मींड़, मुर्की, गमक और रागों का प्रयोग करते थे, उसे हाथ लगाना सबके बस की बात नहीं थी। लेकिन, उनकी यह बहुत बड़ी विशेषता थी कि कठिन चीज को भी वह इतनी सुंदरता और सरलता से पेश करते थे कि श्रोताओं को क्लिष्टता का आभास ही नहीं होता था। लोग स्वर सरिता में इस कदर डूब जाते थे कि उन्हें यह सोचने का ध्यान ही नहीं रहता था कि यह कितनी कठिन चीज है।

विलायत खां उन बच्चों में से थे, जिन्होंने बचपन का सुख भोगा ही नहीं। वह मात्र 11 वर्ष के थे जब उनके पिता का निधन हो गया था। पिता का देहावसान होते ही विलायत खां के कंधों पर न केवल परिवार बल्कि परम्परा को भी संभालने की जिम्मेदारी आ पड़ी। लेकिन विलायत खां इस जिम्मेदारी को पहले से ही समझने लगे थे। वह अपने पिता के साथ इलाहाबाद में आयोजित एक संगीत सम्मेलन में गए थे। वहीं, इनके पिता की तबीयत खराब हो गई। अत: उस शाम उस्ताद इनायत खां के स्थान पर विलायत खां ने सितार वादन कर अपने उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत किया। वापसी के समय रेल में इनायत खां बेहोश हो गए और कोलकाता पहुंचने पर 10 नवम्बर, 1938 को उनका प्राणांत हो गया।

पिता के निधन के बाद मां ने इनके पिता का सितार उन्हें सौंपते हुए कहा था–''बेटे, यह सितार ही तुम्हारी असली विरासत, मिल्कियत है। यही हम सबका सहारा भी है।'' इसके बाद विलायत खां अपने सितार के साथ दिल्ली आ गए। वे अच्छा बजाते थे और उन्हें छोटे–छोटे कार्यक्रम भी मिलने लगे। इन दिनों वह 15–16 घंटे रियाज करते थे। कई बार ऐसा होता था कि अत्यधिक बजाने के कारण उंगली कट जाती थी। कटी उंगली से रक्त के छींटे उड़-उड़कर दीवारों पर पड़ते रहते थे। और ये अपनी धुन में बजाते रहते थे। एक बार जब इनके एक मित्र इनके कमरे में पहुंचे और दीवार पर लाल से काले पड़ गए छींटों को देखा तो पूछ बैठे–''क्या चित्रकारों का भी शौक है तुम्हें ?'' विलायत खां ने मुस्कुराकर जवाब दिया–''हाँ, लेकिन मैं स्वर और लय से शून्य में चित्र बनाता हूँ।''

दिल्ली में संघर्ष के दिनों में विलायत खां को एक बार आर्थिक अभाव के कारण दो–तीन दिन खाना नहीं मिला तो अपने एक मित्र से 5 रूपये का कर्ज लेने उसके घर जा पहुंचे। सोचा कि जब कोई प्रोग्राम या रेडियो से वेतन मिलेगा तो लौटा दूँगा। लेकिन, मित्र के यहां इनका विवेक और स्वाभिमान दोनों जाग उठा। उसने इन्हें समझाया– ''विलायत खां, तुम्हें एक दिन बहुत ऊंचाई पर पहुँचना है। जब तुम उस ऊंचाई पर पहुंचोगे तो तुम्हारा यही मित्र कह देगा कि इस विलायत खां को मैंने 5 रूपये कर्ज दिए थे।'' बस फिर क्या था ? विलायत खां मित्र से थोड़ी देर बातें करके घर लौट आए, जहां अगले दिन के एक कार्यक्रम के लिए कोई उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। और विलायत खां सितार के सुरों में खो गए.

विलायत खां को उस्ताद विलायत खां बनाने में चंपक लाल मोदी द्वारा मुंबई में आयोजित एक संगीत समारोह की खासी भूमिका रही है। इस कार्यक्रम के लिए विलायत खां ने 16 घंटे रोज रियाज करके काफी कुछ तैयार किया था बजाने के लिए। लेकिन, जब बजाने बैठे तो इन्हें सिर्फ 20 मिनट का समय मिला। अत: इनका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया, और ये सोच में पड़ गए कि क्या बजाऊं, और क्या न बजाऊं ? लेकिन, उस दिन सिर्फ 20 मिनट के वादन ने इनके लिए सफलता का वह द्वार खोल दिया था, जिसपर वे पूरी जिन्दगी चलते रहे।

विलायत खां स्वयं को बहुत अच्छी तरह जानते-पहचानते थे। बचपन में ही पिता का साथ छिन जाने से उनकी सफलता और भविष्य के प्रति दूसरे लोग भले ही शंकित रहे हों, किन्तु वह भली भांति जानते थे कि वह क्या चीज हैं, और उन्हें कहां पहुंचना है ! इसीलिए उन्होंने खुद को दूसरों की दृष्टि से नहीं देखा, दूसरों की तुला पर नहीं तौला। उन्होंने स्वयं को साधना की भट्टी में तपाकर स्वयं की कसौटी पर ही परखा.

जिस तरह वे स्वयं को समझते थे, उसी तरह दूसरों को भी उन्होंने समझा। वह अत्यन्त स्वाभिमानी कलाकार थे, इसीलिए दूसरों के स्वाभिमान को भी उन्होंने सम्मान दिया। पं. अनोखे लाल के ना धिं धिं ना से प्रभावित होकर वे उन्हें 'रबड़ भैया' कहते थे जिसे जितना खींचो उतना ही बढ़ता है। पं. सामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराज के साथ भी इनकी जोड़ी खूब जमी जिनकी टोनल क्वालिटी के वे प्रशंसक थे। इसी तरह लखनऊ के मेफेयर सिनेमा हॉल में इनके विस्तृत आलाप, जोड़ और झाले के बाद गत शुरू होने पर पं. रंगनाथ मिश्र ने ज्यों ही उठान लिया, खां साहब ने मुड़कर उल्लासित स्वर में कहा– ''क्या बात है भैया ! जवाब नहीं है आपका।'' मृत्यु

जिन दिनों पं. जवाहर लाल नेहरू बीमार थे, उन दिनों उनके लिए कुछ विशिष्ट लोगों की उपस्थिति में विलायत खां का कार्यक्रम रखा गया। कार्यक्रम चल ही रहा था कि पं. नेहरू के डॉक्टर ने आकर नेहरू जी से कहा कि, ''अब आपको अंदर चलकर आराम करना चाहिए।'' लेकिन, नेहरू जी ने उन्हें रोकते हुए कहा कि, ''आपकी दवा से अधिक आराम मुझे इस सितार से हो रहा है। आप भी यहीं बैठकर इसे सुनिए।''

उस्ताद विलायत खां और पं. रविशंकर की अक्सर तुलना की जाती है। ये दोनों अपनी-अपनी तरह के सितार के दो शिखर हैं। दोनों के सितार का अपना अंदाज है, अपना अनूठापन है। कोई किसी से कम नहीं। इन दोनों के बीच प्रतिस्पर्धा दिखाने-बताने वालों के हाथ निराशा ही लगी क्योंकि स्वयं इन दोनों ने एक-दूसरे की बराबर प्रशंसा ही की। विलायत खां अपनी पसंद के सितार वादकों में सिर्फ एक नाम पं. रविशंकर का लेते थे, तो रविशंकर को भी विलायत खां का ही सितार सर्वाधिक पसंद था। लगभग डेढ़ दशक पूर्व दिल्ली के सिरीफोर्ट सभागार के मंच पर उस्ताद विलायत खां ने उस्ताद जाकिर हुसैन के साथ ज्यों ही पदार्पण किया, त्यों ही विशिष्ट प्रवेश द्वार से सभागार में पं. रविशंकर ने प्रवेश किया। विलायत खां ने पं. रविशंकर को नमस्कार किया, किन्तु उस समय रविशंकर का ध्यान कहीं और था, अत: विलायत खां ने 'रवि दादा नमस्कार' कहकर उनका अभिवादन किया। उस दिन पं. रविशंकर सिर्फ उस्ताद विलायत खां को सुनने पहुंचे थे।

के कुछ ही वर्ष पहले दिल्ली के सिरीफोर्ट सभागार में नई पीढ़ी के युवा कलाकार सुधीर पांडेय ने जब उनके तानों-बानों का सुंदर जवाब देना शुरू किया तो खां साहब ने दर्शकों से कहा-''ये बहुत अच्छा बजा रहे हैं। आपको इनकी प्रशंसा करनी चाहिए।'' तब सभागार तालियों से गूँज उठा था। अनोखे लाल, गुदई महाराज, किशन महाराज, हबीबुद्दीन खां, करामतुल्ला खां, रंगनाथ मिश्र, जाकिर हुसैन, कुमार लाल, नयन घोष, सुधीर पांडेय और अकरम खां जैसे तीन-तीन पीढ़ी के कलाकारों के साथ सितार वादन करके खां साहब ने साबित कर दिया था कि उनका सितार हर युग में नया है, नवेला है, जवां है।

खां साहब का नाम भले ही विलायत था, किन्तु वे और उनका संगीत पूरी तरह भारतीय थे। उन्होंने पूरी दुनिया की संगीत यात्रा की थी। दुनिया भर के संगीत को सुना था। लेकिन, न तो उनके संगीत को अपने सितार में ढालने की कोशिश की और न ही अपने सितार को उनके संगीत के अनुरूप बनाने की। वे खूबसूरत व्यक्तित्व के मालिक थे, और खूबसूरत चीजें उन्हें आकर्षित करती थीं। उन्होंने उस जमाने में एक हिन्दू महिला मोनिशा हाजरा से प्रेम विवाह किया था, जो 14 वर्षों बाद बिना किसी कडुवाहट के टूट भी गया। महंगे और कढ़ाईदार कुर्ते, तरह-तरह के इत्र, गले में हीरे-मोतियों की माला, अच्छा भोजन और अच्छा सितार उनकी पसंद थे.

उन्हें न तो अपने जीवन में और न अपने सितार में किसी का अनावश्यक हस्तक्षेप पसंद था। वे अपनी कीमत जानते थे और मांगते भी थे। लेकिन सिर्फ पैसे के लिए वह कभी भी और कहीं भी बजाने के लिए कभी तैयार नहीं हुए।

विलायत खां ने 'जलसाघर' (सत्यजित राय) और 'कादम्बरी' जैसी फिल्मों में संगीत निर्देशन कर अपनी प्रतिभा के एक अन्य पक्ष का भी साधिकार परिचय दिया था। अपनी शर्तों पर काम करने की शर्त के कारण ही विलायत खां ने एक रेडियो का बहिष्कार कर दिया था, तथा 'पद्मश्री', 'पद्मभूषण' और 'पद्मविभूषण' जैसे अलंकरणों को भी नहीं स्वीकारा। लेकिन, सरकारी सम्मानों को ठुकराने वाले खां साहब ने कुछ सम्मानों को स्वीकारा भी था, जिनमें तत्कालीन राष्ट्रपति फ़ख़रुद्दीन अली अहमद द्वारा प्रदत्त 'आफताब-ए-सितार' और आर्टिस्ट एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा प्रदान की गई 'सितार सम्राट' की उपाधि प्रमुख हैं।

13 मार्च, 2014 की रात उस्ताद विलायत खां साहब के निधन के बाद से ही यह प्रश्न उठने लगा है कि इमदादखानी बाज का भविष्य कैसा है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व हमें आज के कुछ ऐसे सितार वादकों को देखना होगा जो आज प्रथम पंक्ति में हैं- इनमें कुछ प्रमुख नाम हैं- बुधादित्य मुखर्जी, शाहिद परवेज और शुजात खां। शुजात खां विलायत खां के सुपुत्र हैं। जबकि, बुधादित्य मुखर्जी और शाहिद परवेज़ दो भिन्न धाराओं से संबद्ध होने के बावजूद इमदादखानी बाज के ही कलाकार हैं। इसके साथ ही विलायत खां के छोटे भाई इगरत खां के दोनों पुत्र निशात खां और इरशाद खां भी काफी अच्छा बजा रहे हैं। बुधादित्य के बेटे विजयोदित्य भी अच्छा बजा रहे हैं। इन सबके सितार के अंदाज अलग हैं। लेकिन परम्परा एक ही है। और, उस परम्परा ने सबको आंतरिक रूप से एक-दूसरे से जोड़ रखा है। और यह जुड़ाव इस बात का संकेत है कि इमदादखानी बाज का भविष्य काफी उज्जवल है। यह अलग बात है कि उस्ताद विलायत खां जैसे कलाकार को पाने के लिए सदियों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, करनी पड़ेगी.

-'शंकरा' 705, डी/21 सी वार्ड नं. 3, महरौली, नई दिल्ली-110030
दूरभाष- 011- 26641963

साक्षात्कार

पं. सिद्धराम स्वामी कोरवार से भँवरलाल श्रीवास की बातचीत

कोरवार भूमि के सुयोग्य पुत्र : पं. सिद्धराम स्वामी कोरवार

कर्नाटक संगीत के सूक्ष्म ज्ञाता, दक्षिण भारत की सिद्ध संगीत-भूमि कर्नाटक के बीजापुर जिले के कोरवार गाँव में जन्मे पं. सिद्धराम स्वामी का रुझान बचपन से ही संगीत के प्रति इतना गहरा रहा कि किशोर अवस्था में ही घर त्याग कर गदग के संगीत गुरुकुल वीरेश्वर पुण्याश्रम की उन्होंने शरण ली। वहाँ उन्हें संगीत मनीषी डॉ. पंडित पुट्टराज गवई के सान्निध्य में बारह वर्षों तक हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत का प्रशिक्षण मिला। आश्रम के इस प्रवास और गुरु-शिष्य परंपरा से मिली दीक्षा ने पं. सिद्धराम की स्वर-सिद्धि का मार्ग प्रशस्त कर दिया। गायन और वादन दोनों ही विधाओं को उन्होंने समग्रता में आत्मसात किया लेकिन संगीत की शिक्षा को स्वामी कोरबार ने यहाँ विराम नहीं दिया। गांधर्व महाविद्यालय, मुंबई तथा प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद से उन्होंने कंठ संगीत में प्रथम श्रेणी की उपाधियाँ प्राप्त कीं। यही नहीं, अपना गृह राज्य (कर्नाटक) छोड़कर जब पं. सिद्धराम ने मध्यप्रदेश को अपनी कर्मभूमि बनाया तो बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल से संगीत स्नातकोत्तर की उपाधि भी अर्जित की।

नाद ब्रह्म के इस अनन्य उपासक की प्रतिभा और प्रज्ञा में उनके विनयशील व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उनका समरस और समन्वयवादी दृष्टिकोण उनकी सांगीतिक शख्सियत को आज एक नेक और उदार गुरु के रूप में प्रतिष्ठित कर चुका है। भारत के दक्षिणी छोर से उत्तर भारतीय प्रांत में आकर उन्होंने भोपाल में वीरेश्वर पुण्याश्रम की स्थापना की। पिछले चार दर्शकों में स्वामीजी ने अनेक सुशिष्यों की पीढ़ी तैयार कर शास्त्रीय संगीत की पवित्र स्वर धाराओं को परवान चढ़ाया है। गुरु परंपरा के प्रति उनके गहरे आदर की अभिव्यक्ति अब हर साल भोपाल में आयोजित होने वाले 'पंचाक्षर संगीत समारोह' में प्रकट होती है। पंडित सिद्धराम स्वामी कोरवार की गायिकी में ग्वालियर और किराना संगीत घराना की नाद समृद्ध शैली का समावेश है, जिसे उन्होंने निरन्तर अभ्यास, एकाग्रता और तल्लीनता से आत्मसात किया है। यही वजह है कि उनमें कई प्रचलित-अप्रचलित राग को पूरी पारंपरिक शुद्धता और प्रामाणिक आग्रह के साथ गाने का सामर्थ्य है। कर्नाटक संगीत के सूक्ष्म ज्ञाता होने के कारण कई नई बंदिशों को स्वरबद्ध करने का कौशल भी उनके पास है.

आकाशवाणी भोपाल के संगीत प्रभाग से सेवा मुक्त होने के बाद स्वामीजी इन दिनों भोपाल स्थित गुरुकुल वीरेश्वर पुण्याश्रम में गुरु-शिष्य परंपरा का परिपालन करते हुए संगीत का प्रशिक्षण दे रहे हैं.

• गुरुदेव, आपकी शास्त्रीय जीवन-यात्रा कहाँ से शुरू हुई ?

- हम मठ वाले हैं। हमारे मठ में हमेशा मठ में हमेशा भजन होते रहते थे। पाँच साल की उम्र से ही मेरी संगीत में बहुत रुचि होने लगी थी। मैं इधर-उधर सुनकर नकल करने लगा। लोगों को मेरा बचपन का गाना पसन्द आने लगा। सब लोग कहते- 'आओ यार गाओ' और गाना गंवाकर कुछ मिठाई देते थे।

• गुरुदेव, गुरु-शिष्य परम्परा के विषय में आप कुछ कहेंगे ?

- गुरु-शिष्य परम्परा! एक गुरु में जो विशेषता होती है, उसको कुछ लोग फॉलो करते हैं, क्योंकि उनका गाना आकर्षित करता है, इसलिए फॉलो करते हैं और वह शिष्य दूसरे शिष्य को सिखाता है। इस तरह गुरु की परम्परा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है। उसी को गुरु परम्परा कहते हैं और इसे घराना भी बोलते हैं।

• गुरुदेव, शंकर होम्बल जी का भी आपको बहुत सपोर्ट मिला जैसे एक मित्र-बड़े भाई के रूप में?

– हाँ! शंकर होम्बल, जब हम आये तो बिल्कुल हिन्दी नहीं जानते थे, वही कन्नड़ वाले थे। उनसे परिचय होने के बाद उन्होंने कहा– 'आप घबराओ मत, मैं हूँ।' ऐसा उन्होंने कहा। मेरे साथ एक हिन्दी जानने वाले आये थे, कुछ प्रोग्राम भी हुए। फिर पैसे खत्म हो गये तो उन्होंने कहा– 'चलो वापस चलते हैं।' मैंने कहा, 'अरे आप चलो, मैं वापस नहीं जाता। जब तक यहाँ कुछ करके नहीं दिखाऊँगा तब तक मैं वापस नहीं जाऊँगा।' फिर शंकर होम्बल जी ने कहा कि – 'आप घबराओ मत, कुछ भी करेंगे।' फिर होटल में उधार खाने लगे, कुछ ट्यूशन भी किया। महीने में पाँच रुपये। रोज जाना। उस समय पाँच रुपये बहुत होते थे।

उस समय आकाशवाणी में एक प्रोड्यूसर हमारे उधर के ही थे, उन्होंने मुझसे कहा कि– 'चलो तुम रेडियो में सर्विस करो'। मेरी सर्विस करने की इच्छा नहीं थी। बहुत जबर्दस्ती, मैं सर्विस करने लगा, फिर उसी आधार पर खाना-पीना चलने लगा और संगीत सिखाना शुरू किया और गाना-प्रोग्राम वगैरह देना भी शुरू किया। संगीत में बहुत शिष्यों को तैयार किया। आकाशवाणी में ड्यूटी पर जाते थे तो वहाँ भी लोग सीखने के लिए पीछे पड़ जाते थे और घर आयें तो घर से भी पीछे पड़ जाते थे। इस तरह संगीत सिखाते-सिखाते वो कार्यक्रम हर साल करते गये और आगे बढ़ते गये। वो कार्यक्रम किसी साल रुका नहीं है और किसी साल कमजोर नहीं हुआ। बस बढ़ते गये, बढ़ते गये।

• आशीर्वचन के रूप में आप अपने शिष्यों को क्या संदेश देना चाहते हैं?

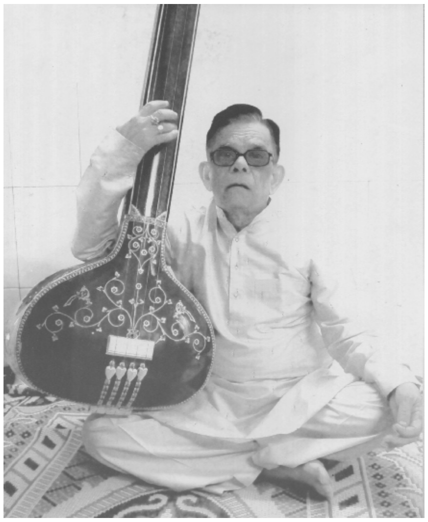

– आशीर्वचन हम ये देना चाहते हैं– जो लोग संगीत को आगे बढ़ाना चाहते हैं, संगीत सीखना चाहते हैं वो सही ढंग से संगीत सीखें, गुरु के पास जायें और नियमित रूप से जायें। कम से कम बारह साल तक एक गुरु के पास नहीं रह पाओ तो नियमित रूप से जाओ। रोज एक घंटा घर पर रियाज करो, पर कम से कम हफ्ते में एक दिन तो गुरु के पास आओ। नियमित! जो नियम है वो बड़ी चीज़ है। जो नियमित नहीं है उसको फिर कुछ नहीं आता। इसलिए नियमित जो चीज करते हैं, वो बहुत बड़ी बात है, इसलिए आप लोग संगीत सीखना ही चाहते हैं तो नियमित रहें और जो सीखा है उसका घर पर नियमित रूप से रियाज करें और उस पर सिद्धि प्राप्त करके फिर गुरु को सुनायें या दिखायें और फिर गुरु जो आगे बताता है उसको घर जाकर फिर पूरा करें। हफ्ते भर एक-एक घंटा रोज करो, तो बढ़ता है। हम यह नहीं कह रहे हैं कि सब छोड़कर संगीत में रहो- सब करो, मगर संगीत का नियम जो है, वो पालन करो, नियम का पालन जरूरी है, तब संगीत बढ़ जायेगा, नहीं तो, संगीत छोड़ दो। कोई भी विषय! हम नियमित रूप से ध्यान से करते हैं तभी तो वो विषय फलता है। नहीं तो, सिर्फ नाम के लिए संगीत पकड़ने से कुछ नहीं होता। यही हमारे शिष्यों को हमारा बताने का काम है।

• आपने '56 वाँ पंचाक्षर संगीत समारोह' 27 सितम्बर, 2017 को भारत भवन में किया था। इसकी यात्रा के बारे में बताइये कि ये छप्पन साल की यात्रा किस तरह से, कहाँ से प्रारम्भ हुई ?

– मैं सन् 1960 में भोपाल आया। भोपाल आकर मैंने शिष्यों को तैयार करना शुरू किया। शिष्यों को तैयार करते-करते! फिर कोई सपोर्ट चाहिए था प्रोग्राम करने के लिए, इसलिए धीरे-धीरे संगीत समारोह छोटे-छोटे स्कूल में या मन्दिर में करने लगे, फिर धीरे-धीरे बड़े स्टेज में करने लगे, रवीन्द्र भवन में किया। ऐसे करते गये। आज तक पूरे देश के संगीतकार यहाँ प्रोग्राम देने के लिए आये हैं। अब पुरस्कार भी देने लगे हैं। पहले पुरस्कार नहीं देते थे। पुरस्कार के रूप में पच्चीस हजार रुपये देते हैं। हर साल किसी एक नामी कलाकार को बुलाते हैं, उनका गायन रखते हैं, उनको पच्चीस हजार रुपये का पुरस्कार 'पुट्टराज गौरव सम्मान' नाम से देते हैं। पुरस्कार पहले भी दो-चार साल दिया है, पर इस नाम से नहीं दिया। पहले पैसे नहीं देते थे, वैसे ही पुरस्कार देते थे.

• इसमें कौन-कौन से घराने प्रमुख रहे हैं.

– सात घराने हैं। ग्वालियर घराना, आगरा घराना, दिल्ली घराना, जयपुर घराना, पटियाला घराना, अल्लादिया घराना, किराना घराना– ये सात घराने मुख्य हैं।

● **गुरुजी, वर्तमान में जो स्थिति चल रही है, उसमें संगीत का भविष्य आप किस तरह से देखते हैं.**

– संगीत को कोई नुकसान नहीं है। संगीत तो मनुष्य के जीवन का संगी है। जीवन के साथ संगीत है। संगीत को कोई बाधा नहीं है। यही हो सकता है कि संगीत थोड़ा परिवर्तित हो सकता है, जो गुरु–शिष्य परम्परा थी वो कम हो सकती है, शास्त्रीय संगीत में भी कुछ कम हो सकता है संगीत। फ्यूजन संगीत हो रहा है। फिल्मी संगीत है, लोक संगीत है, सब संगीत है और कहीं न कहीं संगीत चलता रहेगा। संगीत के लिए कोई नुकसान नहीं है। संगीत कहीं रुकेगा नहीं, वो चलता रहेगा। ■

– इंदुबाला

जैसलमेर के भित्ति अलंकरण

राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में भित्ति अलंकरण की प्रथा शुभ संकेतों के रूप मे यहाँ की संस्कृति का अटूट हिस्सा रहा है, जिनको कलात्मक रूप यहाँ की महिलाओं द्वारा, सदियों से दिया जा रहा है।

राजस्थान के सम्पूर्ण क्षेत्र में भित्ति अलंकरण के रूप में माँडना को बनाया जाता है, जो क्षेत्र विशेष व जाति विशेष के अनुसार भिन्नता लिए हुए होते है। भिन्नता होते हुए भी इनके रंग संयोजन व निर्माण सामग्री एक समान होती है। तथा इन रूपों में अधिकांशत: ज्यामितीय रूपों को संजोया जाता है।

राजस्थान का पश्चिमी क्षेत्र में बसा जैसलमेर जिला पूर्णत: रेतिला क्षैत्र है। यहाँ की विकट परिस्थितियों में भी यहां के लोग अपनी सांस्कृतिक लोककला को अपने जीवन का हिस्सा बनाए हुए है। यहाँ प्राप्त भित्ति अलंकरण में बील, माँडना व रिलीफ आदि को दृष्टिगत किया जा सकता है।

बील खाँचो के रूप में बना आल्यो का एक समूह है, जो आधुनिक समाज में प्रयोग शोकेस जैसे ही प्रयोग किया जाता है। इसे बाँस की खपच्चीयों के टुकड़ों व मिट्टी से बने मोतियों, जालियों व कंगूरों आदि से सजाया जाता है। कहीं–कहीं ऊपरी हिस्सों पर खराब बल्ब तथा काँच के टुकड़ों व चुड़ियों के टुकड़ों से और अधिक सजाया जाता है।

सम्पूर्ण बील निर्मित होने के पश्चात, उस पर सफेद मिट्टी/खड़ियां से रंगांकन किया जाता है। बील की आंतरिक भित्ति पर गेरू व पीली मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। बील घर में प्रयोग आने वाली सामग्री, सजावटी सामग्री तथा पूजा के लिए स्थान होता हैं। बील मुख्य कक्ष में ही बनाए जाते है जो एक अलंकरणात्मक रूप होते हुए उपयोग की एक प्रमुख वस्तु है।

जैसलमेर में बनाए जाने वाले माँडने साधारण रूपों को अपने में संजोये है राजस्थान के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा उस क्षेत्र के माँडने अलंकरण रहित होते हुए भी अपना विशिष्ट स्थान रखते है। ये दरवाजों के दोनों ओर की दीवारों पर सीढ़िनुमा जिनके कोने कुछ ऊपर उठे हुए होते है। ये कोने पाँच या तीन के क्रम में बनाए जाते है। कहीं–कहीं इन कोने के ऊपरी भाग पर कुछ पत्तियाँ बना दी जाती है और यह सफेद रंग से बनाये जाते है तथा सम्पूर्ण भित्ति गेरूआँ या पीली मिट्टी से रंगी जाती है। घर की अन्य दीवारों के निचली भित्ति के हिस्सों पर सफेद खड़ियाँ से चौड़ी पट्टी बना दी जाती है। इस तरह के माँडने इस क्षेत्र में ही प्रमुख रूप से देखे जाते है जो साधारण होते हुए भी अद्‌भुत प्रतीत होते है।

ग्रामीण क्षेत्रों में दीवारों व कोठियों की भित्तियों को सजाने के लिए कई जगह रिलिफ आकृतियों का प्रयोग हुआ हैं। जिनमें कई स्थानों पर कच्ची दीवारों पर मिट्टी से उभारकर रेखाओं के विभिन्न रूपों को दोहराते हुए बना कर अलंकरणात्मक रूप दिया गया है। कहीं ज्यामितिक रेखीय स्वरूपों से फूल पत्तियों को बना कर सज्जा की गई है। दीवारों पर काँच के छोटे टुकड़ों को फूल आदि की आकृति बनाते हुए लगा कर तो कभी रंगीन काँच की चूड़ियों के टुकड़ों को मिट्टी में चिपकाकर आकृतियाँ बनाई जाती है। ये सब साधारण से इन घरों को अद्‌भुत स्वरूप प्रदान करते है। लोक कला में कच्चे घरों में बनी भित्ति अलंकरण की ये कलाएँ अद्‌भुत व अनोखी हैं, जो बिना कला की परिभाषा समझे, ग्रामीण अंचल की महिलाओं द्वारा संतुलित आकारों के संयोजन से बनाई गई है।

शोध अध्येता- इंदुबाला
कोटा चित्रकला, राजकीय महाविद्यालय (बूंदी)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

कोठारी, गुलाब : '**राजस्थान की ग्रामीण कलाएँ एवं कलाकार**' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर,/कृष्ण, रायदास : '**भारतीय चित्रकला**', लीडर प्रेस, इलाहाबाद,/खान, एस.आर. : '**हाड़ौती अंचल एवं धर्म, हाड़ौती के बोलते शिल्पलेख**', हाड़ौती शोध प्रतिष्ठान केसर भवन,/गुप्त, मोहनलाल : '**कोटा संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन**', राजस्थान ग्रंथागार, जोधपुर 2009,/ गैरोला, वाचस्पति : '**भारतीय संस्कृति व कला,** ' उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ संस्थान, लखनऊ,/ गोस्वामी, प्रेमचन्द : '**मनोहर मॉडने**', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,/ '**राजस्थान : संस्कृति, कला एवं साहित्य**', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010,/ '**भारतीय कला के विविध स्वरूप**', पंचशील प्रकाशन, जयपुर.

■

आलेख

रेत के झूंपों में स्वरों का संगम

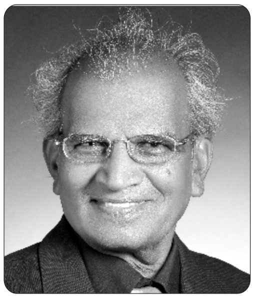

- डॉ. महेन्द्र भानावत

लोक में रहते-रमते अपने अध्ययन, अनुभव तथा चिंतन-मनन से विद्वानों, प्रबुद्धजनों एवं प्रज्ञा मनीषियों ने जो श्रवण-लेखन दिया वही शास्त्र बन गया। इस दृष्टि से वह हर विधा-विद्या चाहे नृत्य गान संगीत की हो या चित्र स्थापत्य की हो, एक परिपक्व, निखरी और सधी हुई बनकर दृष्टिगत हुई। इन सबका आधार लोकसम्मत लोक यानी जन-जन की संगति लिए है। उसी से ज्ञान का भंडारा निकला। इस दृष्टि से देखा जाय तो सारे शास्त्र लोक के ही ककहरे हैं।

8 अक्टूबर 1972 को कलामंडल में मेरे संयोजन में आयोजित एक अखिल भारतीय लोककला संगोष्ठी में आकाशवाणी के महानिदेशक जगदीशचन्द्र माथुर ने कहा था कि आकाशवाणी के क्षेत्रीय केंद्रों को बहुसंख्यक जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए राजस्थान के जैसलमेरी, बाड़मेरी, बाकानेरी, जोधपुरी तथा उदयपुरी परंपराशील गायक-गायिकाओं और उनकी शैलियों को उद्भासित किया। पहलेपहल प्रारंभ किया गया यह प्रयोग पूरे देश में सम्मोहक तथा प्रभावोत्पादक रहा। ये कलाकार ही सर्वाधिक सुने गये। सर्वाधिक श्रोताओं की पसंद बने और सर्वाधिक श्रोताओं की मांग पर ये सर्वाधिक बार सुने जाते रहे।

इसी तथ्य को सार्थक रूप से समझने और गहनतापूर्वक अध्ययन करने की दृष्टि से भारतीय लोककला मंडल ने रेगिस्तानी इलाके जैसलमेर क्षेत्र के लोकसंगीत से जुड़े कलावंतों की संगीत धरोहर से रू-ब-रू होने का सोच वहां की काशीनाथ धर्मशाला में 13, 14 तथा 15 फरवरी 1973 को त्रिदिवसीय आयोजन किया। इसमें अपने साथ मैं अपना रेकार्डिंग यूनिट भी ले गया। यह आयोजन इसलिए भी अधिक सफल रहा कि 150 से अधिक कलावंतों से हम प्रत्यक्षतः मिल सके। उनसे बातचीत कर सके। उनके गायकी-घरानों की तह में जा सके और उनमें प्रचलित लोकसंगीत की अनेक विधाओं की रेकार्डिंग कर सके।

इस समारोह में कलाकारों की एक-से-एक उत्कृष्ट गायकियों को सुन सर्वथा एक नई दिशा का बोध हुआ और यह विश्वास पक्का बना कि शास्त्रीय संगीत के उद्भव एवं विकास की आधारभूमि की यदि किसी को तलाश करनी हो तो वह इन संगीतकारों का सान्निध्य प्राप्त कर वह सबकुछ प्राप्त कर सकता है जिसकी खोज अब भी बनी हुई है।

इस समारोह के लिए एक ऐसा प्रपत्र भी तैयार किया जिससे उधर के संगीत घरानों, गायकियों तथा उनसे जुड़ी क्षेत्रीय विधाओं के संबंध में हमें यथेष्ट जानकारी सुलभ हो सके। लगभग हर गायक ने अपनी-तीन-तीन, चार-चार पीढ़ी से भी अधिक तक की जानकारी दी। तीन गायक तो ऐसे मिले जिन्होंने अपनी नौ से लेकर सोलह पीढ़ी तक का परिचय दिया। ये गायक थे-

(अ) कादरबख्श पिता इस्माइलखां। पोस्ट बड़ोड़ा। वंशावली : इस्माइलखां-सांगेखां-रायचंद-जी वना-बादरा-मेहरी-मीठा-हाजी-खेवरे।

(ब) चिमो पिता अजीत। गांव साधणा। पो. रामगढ़। वंशावली : अजीत-भांजो-भानो-मीठू-कोबड़ो-रामधण-भावु-डोसो-टीकम।

(स) सदक पिता सोढ़ा। गांव कनोई। पो. सम। वंशावली :

सोढ़ा-नभेखां-करमाली-अमीदा-सुरताण-गरीबखां-दरगाईखां-करीमेखां-बीजे खां-जीमेखां-मेरूखां-अड़ेखां-मेरूखां-बादलखां-रायधणखां-सालूखां ।

इन मांगणियारों में जीणा, गेला, ढोली, देधड़ा, गुणसार, सीधर, थायम, मिरासी, बोधर, कालेट, जेता, बाबर, खालतेरा, बामणिया, राड़का, टीकम, डगा, खाड़ेड़ा, तथा कालसी नामक खांपें पाई गई। इनको मांगने वाले इधर गढ़मंगा, फकीर, तकियेवाला, सइद हुसैनी बामण तथा लोठावाला लोग हैं। इनके अतिरिक्त इधर की गायक जातियों में मिरासी, ढाढ़ी, ढोली, जोगी, नट तथा पड़ भोपा निवास करते हैं।

मांगणियारों में प्रमुख वाद्य कमायचा, ढोलक, पेटी, मुरला, सुरिंदा तथा मोरचंग प्रचलित हैं। राठौड़, बारठ, जंजभाटी, हाथी एवं भाटी गोगली इनके जजमान हैं। इनकी गायकी की मुख्य रोगों में सूब, आसा, मांड, पास, सोरठ, धानी, प्रभाती, भैरवी, जंगला, खमाज, गूड़मलार, टोड़ी, बिलावल, तलंग, सामेरी, विरागड़ा, काफी, पूरबी, पीला, जोग, भीम, सालंग, मलार, भेरवास, सामकिलाण, ढोलामारू, पूरबो हैं।

इन मांगणियारों में विविध प्रसंगपरक जो गतादि प्रचलित हैं, वे निम्नांकित हैं-

(1) बालजन्म के गीत - हालरिया, रूमाल, जांजरिया, गीगो, धानरिया, पोमचा, जच्चो, पालणिया तथा बाल विषयक दूहे।

(2) बनड़ा - केसरियो, सुदो सरदार बनड़ो, फेंटो बनड़ो, बना पांच बरस का, चूड़ले रो बनड़ो, मेंदी को बनो, सालूपटा को बनड़ो।

(3) विवाह के गीत - बनड़ा के अतिरिक्त चूड़ला, बधावा, बरसा, कामण, तोरणिया, हल्दीपीठी, कंवर कलेवो, फेरा, पडेला, माहेरा, हाजर कागद, झिरावा, बींद के प्रथम पोशाक धारण करने का सोलो, घोड़ी, हेली, अरणकी, मदकर(सीख), खम्मा-बरात आगमन, विनाक, सांजी, मुजरा, घोड़ो नवलखो गाल।

(4) कथा गीत- नागजी, खींवजी-आभलदे, जस्मा-ओडन, सैणल-बीजानंद, मूमल-महेन्द्र, हीर-रंजो, लैला-मजनूं, ससि-पुन्नू, उमर-मारवी, रणमल, रतन-राणा, काछबिया-राणा, रूपांदे, सोडा, रूप-बसंत, आसा-डाबी, लाखा-राणों।

(5) अन्य गीत- डोरो, ईडोणी, कांगसियो, लसकरियो, धोरा का गीत, दासी, गुलाम, हाजर, मणिहारा, आयल, बायरियो, बेकरियो (ऊंट के खाने का कंटीला), लेरांबाई, निमोली, गोरबंद, हेली, पपैयो, सूवटियो, पणिहारी, बरसालू, करियो, भैया (श्रमगीत), मोरिया, शिकार, घोड़ा व ऊंट गीत, जलाल, जलालो, आगमी ढोलो, राइको, गणगौर, ताटका, लांगोदर, पंखियो, केवड़ो, चिड़कली, लवारियो, बिरधो, लेहरू।

(6) जैसलमेर राजपुरुष एवं राठौड़ विषयक गीत - रंगभरी विदाई राजाजी रो, जुवारसिंहजी, जगमालसिंहजी, खावड़िया राजपूत, गजल गिरधरसिंह, केसरसिंह दरबार की भावन, भेरजी भाटी रा दूहा, बागजी कोटड़िया रा दूहा, सवाईसिंह राठौड़ की धमाल, नाथूसिंह जेतमानसिंह के गीत, मूलाजी जैसलमेर दरबार, मलिनाथजी, भंवरजी ठाकर, राजसिंहजी भाटी, बलातसिंह बाखासर का गीत, साबलसिंहजी की भावन, मदछक राजा, गड़सीसर राजा की भावन, कलाणी जैसलमेर अंदाता री, मूरचंद भाटी की भावन।

सोरठ राग में सूमरदे बालोचण, रतन राईको, भंवरजी एवं काछबो तथा खूब राग में रायधण, मदकर, परताब, सियाला री बराणी, काकरिया रो कोट तथा अवलु घाट री इधर खूब चलती है। जांगड़े, दूहे तथा दोढ़े भी इधर की गायकी के प्रमुख अंग हैं।

दोढ़ों में सवलसिंह, रामचंद्र, अंतरिया तथा खमाजी के दोढ़े; दूहों में जेठुआ, दयारामा, राजिया, जैसिया, नारणा, मूमल-महेन्द्रा, ढोला-मारू, लाखेराव, जला, भेरजी भाटी, बागजी, कोटड़िया तथा आसा-डाबी के दूहे एवं जांगड़ों में रतना राईका, भमरजी, ढोलो, साढ़ो घाट रो, सोनाकेरो चकलो, घोड़लिया, मदकर, धमालड़ी, कांकेरिया रा कोट, अरणी, जलाल, शिवजी, बिलावल आदि प्रिय हैं।

हमारे लिए यह सबसे बड़ी उपलब्धि रही कि हमने चौदह घण्टे की अभूतपूर्व रेकार्डिंग की। वहां से लौटकर जब मैंने कलामंडल के संचालक देवीलाल सामर को उस क्षेत्र की अतुलनीय उपलब्धि की जानकारी दी तो उन्हें बड़े गौरव की अनुभूति हुई। बोले, काश! हम सब तरह से सामर्थ्यवान होते ताकि उन कलाकारों को धनाभाव से गुजारा नहीं करना पड़ता लेकिन हमें शीघ्र ही ऐसा कुछ काम करना चाहिए जिससे उन कलाकारों की पहचान बने। वे सरकार की निगाहों में आएं। उनका यथोचित मान-सम्मान हो और पूरे विश्व में राजस्थानी लोकसंगीत की दुन्दुभि बजे। इसके लिए सामरजी ने कलामंडल में लोकानुरंजन मेले का शुभारंभ किया जिसने पूरे देश का ध्यान आकृष्ट किया।

लोकसंगीत की ऐसी खदान को पहले किसी ने नहीं खोदा। न जाने ऐसी कितनी खदानें रेत के महासमंदर में शान्त पड़ी लहरों के साथ लटरा-फटरा रही हैं। न जाने कितने काल दुकाल बन दबे पड़े हैं जो हजारों-लाखों पन्नों के सुकाल इतिहास की ओट में अंगड़ाई लेकर बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं और हम अपनी ही आंखों के सामने उस दृश्यवान को भी अदृश्य होते देख रहे हैं। विधि की इस विडम्बना को कौन जान पायेगा.

जैसलमेर की आशातीत उपलब्धि के पश्चात इसी प्रकार का एक समारोह बाड़मेर में 18, 19 तथा 20 मार्च 1974 को किया गया। इसमें राजस्थान संगीत नाटक अकादमी की सचिव सुधा राजहंस तथा कलामंडल से मैंने अपनी-अपनी रेकार्डिंग यूनिट के साथ भाग लिया। इस बार तीनों दिन उन कलाकारों का भी आना-जाना बना रहा जो अ-निमंत्रित थे।

जब उनसे पूछा गया तो बोले- 'अब आप ही हमारे माई-

बाप और जजमान हो। आप चाहे बुलाओ या मत बुलाओ। हम तो आयेंगे ही आयेंगे।' लगभग 27 गांवों के सौ कलावन्तों की रेकार्डिंग की गयी। कुल रेकार्डिंग लगभग 8 घंटे की हुई। प्रत्येक आनेवाले कलाकार से उसकी गायकी तथा घराने के संबंध में पूछा गया। अपनी पांच-पांच, छह-छह पीढ़ियां तो प्रत्येक को याद थीं। कुछ ने तो अपनी नौ-नौ पीढ़ियां तक गिना दीं। नग्गा पिता आसा मांगणियार, गांव लूर, पो. जालीपा, तहसील बाड़मेर ने बताया कि उनकी उत्पत्ति राजपूतों से हुई। उसने अपनी वंशावली इस प्रकार कही- आसा-आईदान-जम्मा-मेहरा-रामजी-के सरा-दईदान-भारमल-नादा। सभी लोग गाने-बजाने का काम करते थे।

साठ वर्षीय आसा पिता लांगा, गांव हडुवा, पो. गूंगा, तहसील सिव ने बताया कि प्रारंभ में वे लोग हिन्दू थे। हजरत इब्राहीम के समय में मुसलमान बना दिये गये। आज भी उनके सारे रीति-रिवाज हिन्दुओं में से हैं मगर धर्म मुसलमान का पाला जाता है. इनकी वंशावलियों से पता चलता है कि इनमें से बहुत से नाम हिन्दू नामों से मिलते हुए हैं। यथा- (क) बागा पिता हीरा मांगणियार। पो. बेसड़ा, त. पोकरण। हीरा-सदा-मदरु-जेठा-भागू-जोधा-हगता।

(ख) भंवरा पिता सुरताण। पो. बिसाला, त. बाड़मेर। सुरताण-लाधा-पीरो-अजबो-गोरधन- जलाल-राधो।

(ग) सादी पिता कादरा। गांव बीसू, पो. बीसूकलास। कादरा-नबा-मदरूप-पंचाण-काना-राजा-जोगो।

(घ) राणा पिता हिंदाल। पो. चोवटण, त. चोवटण। हिंदाल-भानो-हरूपो-सुमार-जुगतो-नरोजी-बासो-अजो।

ये मांगणियार दबे-खुले में मिरासी, दमामी, मीर, डूम, राणा, भांड आदि नामों से भी जाने जाते हैं। इनमें अधिकतर लोग कमायचा बजाते हैं। कुछ लोग सतारा तथा मोरचंग बजाते हैं। थूबली गांव, पो. नीमला, त. सिव का सच्चू पिता बुलो अपने साथ श्रीमंडल लेकर आया। यह बत्तीस तार का बाजा होता है। इसका घेरा रोईड़े की लकड़ी का बना होता है। बत्तीस मोरड़े होते हैं जो शीशम के बने होते हैं। नीचे वाला हिस्सा जिस पर से तार निकलते हैं, घोड़नो कहलाता है। जो तार सीधा जाता है उसे झारा कहते हैं अन्य सारे तार थाट कहलाते हैं।

सच्चू के कहे अनुसार उसके दादाजी श्रीमंडल बजाया करते थे परन्तु वह टूट गया। उसके देखा-देख अपना बाजा उन्होंने स्वयं ने बनाया और बजाना सीखा। प्राय: ये लोग राठौड़ राजपूतों तथा महाजनों के याचक हैं परन्तु अब इन्हें दर्जी, सुथार, माली, जोशी, कुमार, खवास से भी अपनी आजीविका चलाने के लिए मजबूर होना पड़ गया है। सोनेरिया, बेद, गुणसार, देधड़ा, डगा, कासी, सीधर, धोली, जीणा, बोदर, खड़ेरा, देसाल, बरणा, बाबर, कालूंभार, कालेठ, कटु, भेट, सीपा, बबी, मोनसी, सीदर, गेला, रामटा, पुशिया, खालवेश आदि इनकी खापें हैं।

सत्तर वर्षीय कादरा ने बताया कि प्रारंभ में कटु, भेट कालेठ ये तीन ही खापें थीं। बहादुरखां ने कहा कि प्राय: कर्म के अनुसार इन खापों का इतना विस्तार हुआ। जैसे घोड़े पर जीण कसने वाले जीणा, खल डालने वाले खड़ेश, घट्टी पीसने वाले पुरिया, सोने-चांदी का काम करने वाले सोनेरिया, पूजा-पाठ करने वाले बेद तथा गुणी व्यक्ति गुणसार कहलाये। इन्हें मांगनेवाले गड़मंगे होते हैं जो प्राय: विवाह-शादी पर आते हैं। ये लोग केवल बजाते हैं, गाते नहीं हैं। बाड़मेर, पालनपुर, जैसलमेर, जोधपुर इनके खास ठिकाने हैं। गड़मंगों के अलावा कभी-कभी जोगी, खांसी तथा कूचबंध भी

मांगने के लिए आते हैं। प्राय: सभी वाद्य सिंध में बनते हैं। सतारा सुथार लोगों द्वारा सुपारी की लकड़ी से बनाया जाता है।

खालसा वाद्य जिसे वादा भी कहते हैं, मुसलमान बनाते हैं। यह सुपारी की लकड़ी से बनाया जाता है। ये नर व मादा दो वाद्य होते हैं जो एक साथ बजाये जाते हैं। नर पर पैरवे दिये जाते हैं और मादा पर ग्राम बदला जाता है। ये लोग गाना-बजाना प्राय: अपने गुरु के पास रहकर सीखते हैं। इनमें से कइयों के गुरु सिंध में हैं। कुछ लोग मोरचंग जैसा वाद्य बकरियां चराते वक्त स्वयं ही सीख गये हैं।

सिव निवासी सिद्दीक खड़ताल बजाने का अद्वितीय कलाकार है। यह दो लकड़ी के दो टुकड़ों का बना होता है जो दोनों हाथों में दो-दो की संख्या में रखकर उनके आपसी आघात से लय-संगीत सरसाया जाता है। सिद्दीक के अतिरिक्त कूंडा गांव, तहसील फतेगढ़ (जैसलमेर) का नजरा पिता खींरा नामक कलाकार भी इसमें शरीक हुआ।

राजस्थान संगीत नाटक अकादमी के अध्यक्ष के रूप में सामरजी ने लोकसंगीत के ऐसे जगह-जगह समारोह आयोजित किये। इससे पूरे देश में राजस्थानी लोकसंगीत का दबदबा कायम हुआ। मांड गायिका अल्लाजिलाईबाई, गवरीदेवी, नूरमोहम्मद लंगा, भजन गायिका सोहनीदेवी, सिद्दीक जैसे कलाकार जगह-जगह सम्मानित होने लगे। अल्लाजिलाईबाई तथा सिद्दीक को सरकार द्वारा पद्मश्री से नवाजा गया।

पद्मश्री होने के बाद जब सिद्दीक को कलामंडल आमंत्रित किया गया तो मैंने उन्हें अपने कक्ष में कहा- 'सिद्दीकजी आप खड़े क्यों हैं? खड़ा तो मुझे होना चाहिए आपके स्वागत में। सरकार ने आपका पद्मश्री से बहुमान किया सो अच्छा रहा।' सिद्दीक भावुक हो बोले, 'लेकिन अपने गांव और यजमानों से छूट गया। अच्छा होता इसके साथ सरकार कुछ वजीफा बांध देती तो परिवार का गुजरबसर ठीक से हो पाता।' तब मैंने सुझाव दिया कि सरकार लोककलाकारों के लिए कोई ऐसा ही अलग तरह का पुरस्कार प्रारंभ करे और उतनी ही बड़ी राशि भी दे ताकि वे गौरव के साथ अपना जीवन जी सकें।

दिखने में सबसे सामान्य और हल्के खड़ताल से सिद्दीक ने सबका ध्यान आकर्षित किया। अपने हाथों को ही नहीं, पूरे शरीर और मुख-आंख की विविध भावी मुद्राओं से जो संगीत लहरियां निकालीं जैसे स्वर्गीय आनंद की सृष्टि में सभी अपनी सुधबुध खो बैठे। बाद में सिद्दीक को संस्थापक देवीलाल सामर ने कलामंडल में आमंत्रित कर उसकी शानदार प्रस्तुति के साथ जैसलमेर तथा बाड़मेर के संगीत गायकों का समारोह आयोजित किया और उसे लोकसंगीत समारोह नाम दिया। अरबखां जलतरंग और सितार बजानेवाला एक नामी वादक हुआ। कादरा ने उसको अपना उस्ताद बनाया। इन वाद्यों पर ये लोग सोरठ, सामेरी, बिलावल, सारंग, तोड़ी, गूड़ मलार, खमायची, आसा, भभास, सूब, धानी, प्रभाती, कल्याण, कारेल, मारु, पीलू, राणा, रामगरी, जोग आदि रागें बड़ी तन्मयतापूर्वक गा लेते हैं.

इन रागों के साथ ये लोग बूंदी राजा धरमसी, सबलसिंह, जुगतसिंह तथा गड़सर राजा की भावन, अमरसिंह की कटारी, मजीसा रो सोलो, बाघजी, रिड़मल, डोढ़ो, खमाज तथा करियो, लसकरियो, बना, बनी, अवलू, बधावा, तोरण, पपैयो, भंवरजी, रतन राइका, अंतरियो, कुरजल, पोपटियो, लहरियो, बायरियो, बरसालो, हिचकी आदि गीत गाते हैं। राजपूतों की मृत्यु पर ये लोग मसाण में भी गाते हैं।

मांगणियारों के अलावा बिसाला के राणा पिता माना भांबी से तंदूरे पर भजन, परभाती तथा हरजस टेप किये गये। इन कलाकारों में करणाराम पिता पांचाराम, जैसलमेर ने अपने नड़ वाद्य के साथ भाग लिया। पांचाराम भील है जिसे नायक, थोरी तथा माझी राणा भी कहते हैं। यह वाद्य साची कंगोर वृक्ष की डाली से बनाया जाता है। सिंध, अमरकोट, नोरोढ़ोरो, मीरपुर तथा हैदराबाद में इसे केहरी मुसलमान बजाते हैं। यह बड़ा कठिन फूंक वाद्य है। उधर मुसलमानों की जत्त औरतें भी इसे बजाती हैं। छोटी नड़ को कानी कहते हैं।

सत्तो गांव सम तहसील जैसलमेर से जगन्नाथ पिता राणानाथ स्वामी आया। उन्हें नाथजी, गुसाई व बाबाजी भी कहते हैं। रावल भाटी इनके जजमान हैं। स्वामी कौन होते हैं और कब से बने पूछने पर उन्होंने बताया कि जब जोरावरसिंह राज कर रहे थे तब उनके पुत्र गुलाबसिंह ने आठ वर्ष की उम्र में ही भजन-कीर्तन प्रारंभ कर दिया। वे स्वामी बने गये और नाथ कहलाये। उनके बाद सारा वंश ही नाथ बन गया। शिवरात्रि पर गुलाबनाथजी की स्मृति में मेला भरता है तब भजनों पर नाच-गान किया जाता है। जगन्नाथ ने अपनी वंशावली इस प्रकार बताई-

जोरावरसिंह (राजा) से गुलाबनाथ-चेतननाथ-बिसवानाथ-रूपनाथ-मंगलनाथ-ज्ञाननाथ-हीरानाथ-माननाथ-राणानाथ। उधर के अन्य कलाकारों में गांव कुंडल, पो. गिराब, त. सिव का शंकरा मेघवाल भजन, हेली, वाणी, फकीरी, दोहे, सवैये तथा आरती, कथा गाने में बड़ा नाम है। बाड़मेर क्षेत्र में घूमर, मटकू, तोईसा तथा गैर नृत्य स्त्रियों में बड़े प्रिय रहे हैं। तोईसा में गरबी प्रकृति के गीत गाये जाते हैं। यथा- घेवरिया बाजै नेवरिया बाजै तथा घूमर का सागर पाणीड़ा ने जाऊं गीत बहुत प्रसिद्ध है। गैर के साथ बादीला डांडिया रमवा जाऊं गीत बहुत चलता है। हडुवा में नगता मेघवाल घड़ा बजाने का तथा केलनूर गांव में सिक्कू भील अच्छा पावा बजाता है। सम तहसील का बसियो म्याजलार औरतों का वेश बनाकर नाचता है।

सीमांत प्रहरी बाड़मेर में प्रथम बार लोकसंगीत की इन रक्षक जातियों का समागम उल्लासकारी घटना थी। संगीत का ऐसा

समृद्ध खजाना मरुभूमि के कण-कण में बिखरा हुआ है। आवश्यकता है इन कलाविदों को उचित संरक्षण, प्रतिष्ठा और मार्गदर्शन देने की। यहां हमने यह महसूस किया कि किसी भी कला और संस्कृति की सही और सच्ची परख यही है कि हम उन कलाकारों के घर-अंचलों में जाकर उनसे हिलें-मिलें और उनके पास जो समृद्ध संपदा है उसका उन्हें और उनके आसपास रहने वालों को बता दें और उनके बीच उन्हें मान-सम्मान और इज्जत-प्रतिष्ठा देकर उनका सही मूल्यांकन करें अन्यथा सच्चे पारखियों के अभाव में इन कला-रूपों की रोड़ियां ही बढ़ती चली जायेंगी।

इनमें से श्रेष्ठ चुनिन्दा कलाकारों को भारतीय लोककला मंडल के लोकानुरंजन मेलों तथा विशिष्ट समारोहों में बुलाकर उनके प्रदर्शन आयोजित किये और उन्हें सम्मानित भी किया। गायक नूर मोहम्मद लंगा, खड़ताल वादक सिद्दीक, नड़ वादक करणा भील जैसे कलाकारों ने अपने झूंपों से बाहर निकल अपना हौंसला बुलन्द किया। राज्य की संगीत नाटक अकादमी ने जगह-जगह पूरे प्रदेश में और बाहर भी इन्हें सशक्त मंच प्रदान किया। इनके अलावा मांड गायिका अल्लाजिलाईबाई, गवरीदेवी, तथा भजन गायिका सोहनीदेवी से भी मैंने कई जगह भेंट कर उनकी सांगीतिक साधना-परंपरा पर विस्तृत जानकारी प्राप्त कर अपने को समृद्ध किया। इसमें करणा की सर्वाधिक लोकप्रियता इसलिए रही कि वह जितना प्रख्यात धाड़ेती के रूप में रहा उतनी ही ख्याति उसने अपनी लंबी जलेबीदार बंटखाती मूंछों से अर्जित की और इनसे परे वह नड़वादल की कला में भी बेजोड़ था। अल्लाजिलाईबाई ने 'केसरिया बालम, आवोनी पधारो म्हारे देश' गीत गाकर अकूत ख्याति अर्जित की। राज्य के पर्यटन विभाग ने इसी मांड गीत से 'पधारो म्हारे देश' को स्लोगन के रूप में अपना कर पूरे विश्व का ध्यान केन्द्रित किया। अब तो ये सब स्मृतिशेष ही बने हुए हैं।

- 352, श्रीकृष्णपुरा, सेंटपॉल सकूल के पास, उदयपुर-313001 मो. 9351609040

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला-संस्कृति के अछूते पहलुओं पर सर्जनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबन्ध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई, अथवा सुवाच्य लिपि में अंकित हों। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेज सकते हैं।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें।

आलेख

गुरु पूजन : एक संस्कार, इव्हेन्ट नहीं!

– माधवी नानल

आने वाली सारी पूर्णिमाओं में से सर्वश्रेष्ठ पूर्णिमा यानी गुरुपूर्णिमा। इस महीने में गुरुपूर्णिमा है। जीवन का मार्ग निश्चित करते हुए उसे आसान बनाने के लिए मार्गदर्शन करने वाले गुरु के प्रति शिष्य द्वारा समर्पण करने का दिन। उसी प्रकार जीने का मूलमंत्र, स्वीकार किए हुए कार्य की विश्वसनीयता और ज्ञानदान का पात्र चमकदार एवं परिपूर्ण बनाए जाने की संतुष्टि गुरु द्वारा माने जाने का दिन। जीवन के शुरुआती दिन गुरु के आसपास ही घूमते हैं। पहले शिष्य हमेशा गुरु के ऋण में रहता था।

गुरुपूर्णिमा के संदर्भ में गुरु यानी क्या और उसकी परिभाषा क्या है यह देखना होगा। आदरणीय या पूजनीय व्यक्ति यानी इनमें माँ-बाप, बड़े भाई-बहन, चाचा, मामा या अन्य बड़े लोगों का समावेश होता है। इनमें गुरु का अधिक उच्चवर्णीय स्थान है। विशेष अर्थ में आचार्य, ज्ञानदाता, शिक्षक, उपदेशक इन्हें गुरु कहा जाता है। गुरु की उपाधि पुरुषों के समान महिलाओं को भी प्राप्त हो सकती है।

पहले गुरु यह अधिकार एक विशिष्ट वर्ग या समाज को ही प्राप्त था। आज के नए युग में कोई भी विद्वान या विदुषी गुरु के रूप में भूमिका स्वीकार सकता है। पहले गुरु का घर ही गुरुकुल था इसलिए विद्यार्थी गुरु के घर पर रहकर अध्ययन करते थे। अध्ययन समाप्ति के पश्चात् शिष्य का स्वयं के घर लौटने का संस्कार पूरा होता था। इसे 'समावर्तन' या 'स्नान' कहा जाता था। समावर्तन के समय गुरु को दक्षिणा देने की परम्परा थी।

यह इतिहास नई पीढ़ी को पता नहीं है, इसीलिए बताने का मन हुआ। आज गुरुदक्षिणा हर महीने देनी पड़ती है क्योंकि रुपये का चेहरा देखे बगैर अध्ययन प्रक्रिया पूरी नहीं होती है। गुरु, शिष्य की जीवनपद्धति का मूल्य व्यवहार पूरी तरह बदल गया है। जमाने के साथ संस्कृति बदलती है और संस्कृति के अनुरूप संस्कार और उसका आचरण भी बदलता है।

गुरुपूर्णिमा उत्सव

गुरुऋण व्यक्त करने का दिन यानी गुरुपूर्णिमा का प्रस्तुतीकरण गुरु-शिष्य तक ही सीमित होता है या होना चाहिए। शिष्य की प्रगति देखना और त्रुटियों को पहचानना यह उसका अंतर्गत हेतु होता है। आज यह उत्सव रूप में परिवर्तित होकर उसका अर्थकारण इतना व्यापक होकर इसकी झगमगाहट इतनी बढ़ गई है कि इसकी वाकई कितनी जरूरत है, इसका उत्तर ढूंढ़ना अत्यंत कठिन हो गया है। इसमें विद्यार्थियों को शाबाशी देना यह अपेक्षित है या उनकी प्रशंसा अपेक्षित होती है? विद्यार्थियों को परखने के लिए बड़े सभागृह, बड़े समाचार पत्रों में विज्ञापन, कोई मुख्य अतिथि, पुरस्कार या प्रशस्तिपत्र वितरण यह तामझाम क्या सुशिक्षितों को जरूरी लगता है? क्या यह उचित है? और अगर जरूरी लगता है तो इसका स्वरूप शालीन व संस्कारक्षम हो इस पर नए सिरे से सोचने का समय आ गया है, क्या ऐसा नहीं लगता? शाबासी और प्रशंसा में फर्क है और यही मूल्यवान होता है।

मैं स्वयं अध्यापन का कार्य करती हूँ और इस वक्त मैं ही यह विचार रखती हूँ कि गुरुपूर्णिमा के दिन किया जाने वाला गुरुपूजन आलीशान हो या फिर ध्यान में रह जाए ऐसा संस्कारक्षम हो, इस पर विचार होना चाहिए। इसमें कई महत्वपूर्ण बातें खटकती हैं जैसे विद्यार्थी हर महीने फीस देते हैं लेकिन फिर भी गुरुपूजन के बाद दक्षिणारूपी थैली देना! दूसरे अनेक नामचीन लोगों को निमंत्रण देकर उनका विज्ञापन करना। तीसरी बात रंगमंच सजावट, हार, बुके इत्यादि। इस पर आपत्ति होने का कारण नहीं क्योंकि साल दर साल विद्यार्थियों से चंदा लेकर एक पूरा दिन कार्यक्रम किया जाता है। इसमें और मजेदार चीज यह कि हर कोई गुरु को नारियल, पेड़ा, बर्फी और शॉल आदि भेंट रूप में देता है। होता यह है कि इस एक दिन में इन चीजों का इतना भंडार जमा हो जाता है कि कई लोग इसे बांट देते हैं या फिर सब बेकार हो जाता है। अब इसमें इच्छा का महत्व भी है तो इन वस्तुओं का बेकार हो जाना और पैसे की बरबादी कहाँ तक उचित है? हम लोग अगली पीढ़ी पर क्या यही संस्कार करने वाले हैं? अगर नहीं तो हमें ही इसमें से मार्ग ढूँढ़ना होगा।

गुरुपूजन, विद्यार्थियों का कार्यक्रम, सामूजिक भोजन यह सब चीजें जरूरी हैं क्योंकि इस वजह से सारे शिष्य एक साथ मिलते हैं, आपसी स्नेह बढ़ता है। मैं स्वयं इन सारी चीजों से रूबरू हूँ। लगभग पंद्रह से बीस साल पहले की गुरुपूर्णिमा का स्वरूप भिन्न था पर आज इसे जो उत्सव रूप में आया है वह कितने संस्कार बनाएगा इसकी चिंता होती है। यह मेरे अकेले का विचार नहीं है बल्कि अनेकों के विचार मेरी कलम से मैं व्यक्त कर रही हूँ।

आदर्श गुरुपूजन ऐसा होना चाहिए :

गुरु से अधिक विद्यार्थियों की सहभागिता होनी चाहिए।

गुरुपूजन के अवसर पर जिम्मेदारी की भावना से आयोजन निश्चित किया जाए। सारे शिष्य एक साथ मिलकर अनावश्यक खर्च से बचते हुए उत्तम नियोजन करें। इसमें से उभरने वाली शिक्षकों की आपसी प्रतियोगिता को टाला जाए। तन्मयता, समर्पण वृत्ति और जिम्मेदारी से संगीत साधना अर्चना करें। कम से कम गुरुपूजन के अवसर पर संगीत अर्चना हेतु दक्षिणा देते समय समर्पण वृत्ति रखी जाए। गुरुपूजन के साथ-साथ सरस्वती पूजन भी नम्रतापूर्वक किया जाए।

संगीत मूलत: एक समर्पित कला है। समर्पित वृत्ति से ही उसे सहेजना पड़ता है। कहीं भी घमंड न रखते हुए मैं केवल संगीत के लिए हूँ और संगीत मेरे लिए ऐसा समझने पर ही संगीत कला और सरस्वती प्रसन्न होती हैं, ऐसी भारतीयों की धारणा है और यह सच भी है। ऐसे में सात्विकता से गुरुपूजन करने के लिए मनोवृत्ति को बदलने की हम सबकी जिम्मेदारी बनती है। पुरानी सारी बातें या चीजें खराब नहीं थीं। हम लोग वह ताकत और संस्कारों का जादू पहचान नहीं पाए। पुराने लोगों ने इन्हीं संस्कारों में से सांगीतिक भव्यता, अमीरी और सांगीतिक चमत्कार का इतिहास निर्माण किया एवं वैभव हासिल करवाया.

अब भी वक्त बाकी है। हम लोग पुराने को ही सोना समझकर विचारपूर्वक काम में लग जाएं। विचारों का परिवर्तन करें। उपलब्ध साधनों से उत्तम ज्ञानसंस्कार करें। इसी से गुरुपूजन की सार्थकता सिद्ध होगी। कल आने वाला दिन नया और अलग होगा.

इसमें विद्यार्थियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण यह कि हम क्या कर सकते हैं इसे जानने का यह दिन है.

गुरुपूर्णिमा की हार्दिक शुभकामनाएँ।

इस विषय सन्दर्भ में एक अभूतपूर्व संस्मरण

सरोद नवाज उस्ताद बाबा अल्लाउद्दीन खां इनसे जुड़ी एक याद 'संगीत कला विहार', इस मासिक पत्रिका के आद्य संपादक प्रा. श्री बी.आर. देवधर जी ने लिखकर रखी है। यह वास्तव में घटी हुई घटना खास रूप से बाल गोपालों हेतु। स्वयं को अनुशासन में ढालने से क्या होता है यह सीखने जैसा है और गुरुनिष्ठा का अर्थ भी अच्छी तरह समझ में आता है। भारतरत्न पं. रविशंकर, सितारवादक और उस्ताद अली अकबर, सरोदवादक के ये गुरु हैं।

''वर्ष 1936 में इलाहाबाद में एक संगीत परिषद में उस्ताद अल्लाउद्दीन खां से मेरी पहली मुलाकात हुई। उसी परिषद में मैंने पहली बार खां साहब का सरोद एवं वॉयलिन (बेला) वादन सुना। आप उम्र और ज्ञान में मुझसे बड़े होने के बावजूद मुझसे बेहद अपनेपन का व्यवहार किया, जिसका मेरे मन पर बहुत

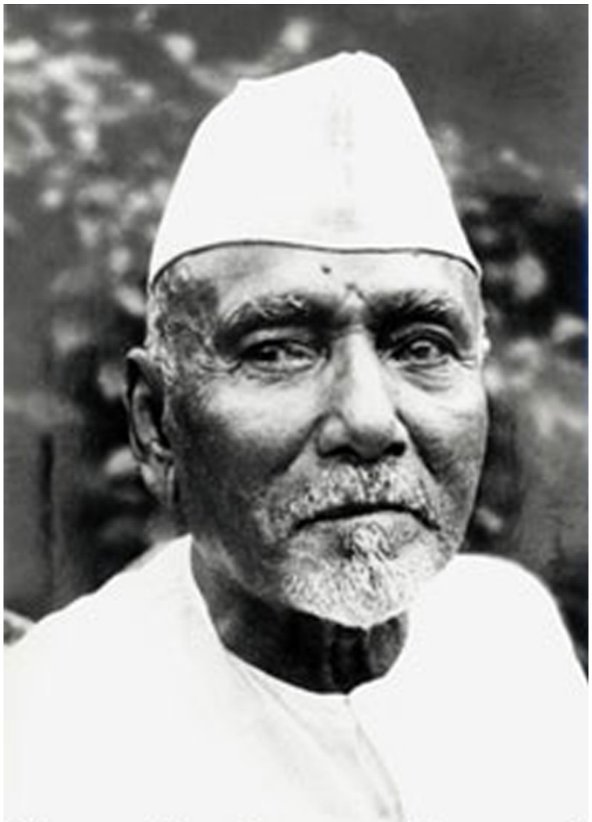

अच्छा असर हुआ।

इलाहाबाद में रहते हुए एक दिन सुबह सात बजे मुझे एक ब्राह्मण कंधे पर एक पंचा डाले हुए आता नजर आया, पहले मेरा ध्यान नहीं गया, पर जैसे ही वो नजदीक आया तो तुरंत मेरे ध्यान में आया कि यह कोई ब्राह्मण न होकर उस्ताद अल्लाउद्दीन खां हैं जिनसे हाल ही में पहचान हुई है। मैंने आगे होकर नमस्कार किया और पूछा कि इतनी सुबह ठंड में कहां जा रहे हैं ? उन्होंने कहा आज एकादशी है और किस्मत से मैं गंगा किनारे हूँ इसलिए गंगास्नान हेतु जा रहा हूँ। मैं स्वयं ब्राह्मण होकर भी मुझे यह मालूम नहीं, इस पर मन ही मन शरमाया और खां साहब के बारे में और जानने की इच्छा होने लगी।''

उस्ताद बाबा अल्लाउद्दीन खां बताते हैं कि-

मेरे घर से गायब हो जाने पर घर के सारे लोग अस्वस्थ हो गए थे। आखिर सात सालों बाद मेरे बड़े भाई आफताबुद्दिन से रहा नहीं गया, हमारे गांव के जमींदारों के लड़के कलकत्ता में कॉलेज की पढ़ाई करते थे, उन्हें मेरे भाईसाहब ने पत्र लिखा और बाद में वे कलकत्ता आए तथा सारे गाने वालों के बीच मुझे खोजना शुरू किया पर मेरा पता नहीं मिल पाया। आखिर एक सज्जन ने उन्हें बताया कि आप जिस पंद्रह वर्ष के लड़के का रंग, रूप, कद बता रहे हैं वैसा लड़का पं. नानू गोपाल जी के यहां गाना सीख रहा है, पर वो मुसलमान नहीं

हिन्दू है।

आखिर पं. नानू गोपाल के यहां आकर मेरे भाईसाहब ने मुझे पहचाना और आलिंगन में भर लिया। पं. नानू गोपाल जी ने उन्हें बताया कि लड़का बहुत प्रतिभावान, ईमानदार और अभ्यासु प्रवृत्ति का है। पिछले सात सालों में उसने संगीत में बहुत अच्छी प्रगति की है और तबला, मृदंगम् भी बजाने लगा है। हम लोग विद्यार्थियों की अच्छी परीक्षा लिए बगैर सारी विद्याएं नहीं सिखाते हैं। लड़के आते हैं, थोड़ा सीते हैं और भाग जाते हैं। आपका भाई अब मेरी परीक्षा में पास हो गया है, और अब आगे मैं उसे सिखाकर तैयार करूँगा साथ ही खाने-पीने का इंतजाम भी करूंगा।

इतना सुनने के बाद मेरे भाईसाहब ने एक महीने के लिए मुझे घर ले जाने की अनुमति हेतु उनसे विनती की, पं. नानू गोपाल जी ने भी उदार मन से इसकी अनुमति दी।

हमारे शिवपुर जाकर घर पहुंचने के बाद घर में सभी को बड़ी खुशी हुई, सारे रिश्तेदार मिलने आए, कलकत्ता जैसे शहर में अकेले वो भी निर्व्यसनी और उस समय के समाज में उपेक्षित संगीत वातावरण में रहना इस पर सभी बड़े संतुष्ट हुए। मेरे वृद्ध पिता मुझे पास लेकर बड़ी आस्था से मेरा गाना सुनते और कहते, ''बेटा मुझे भी संगीत सीखने का बड़ा शौक था, पर मेरी अपेक्षा अतृप्त इच्छा अब तू पूरी कर, पर गाने वालों की बुराइयों, व्यसनों से दूर रह और मन से मुझे आशीर्वाद दिया।''

आगे चलकर इन्हीं बाबा अल्लाउद्दीन खां साहब ने अनेक वाद्य सीखे। कई वाद्यों को कइयों को सिखाकर कई कलाकार निर्माण किए। बाबा बहुत जिद्दी और स्वाभिमानी थे लेकिन दिल के उतने ही बड़े थे। ऐसे गुरु बिरले ही देखने को मिलते हैं।

शिमरिंग हाईटस्, पॅराडाईज सिनेमामागे, ब्लॉक नं. 501, भागोजी कीर मार्ग, माहीम, मुम्बई-4000616

संगीत

संगीत-कला का प्रतिनिधि मासिक

प्रधान सम्पादक-**डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग**

सम्पादक -**डॉ. सुधा पटवर्धन**

सम्पर्क - संगीत कार्यालय, हाथरस 204101

(उ.प्र.) मो.- 099270 63111

ईमेल : sangeetkaryalaya101@gmail.com

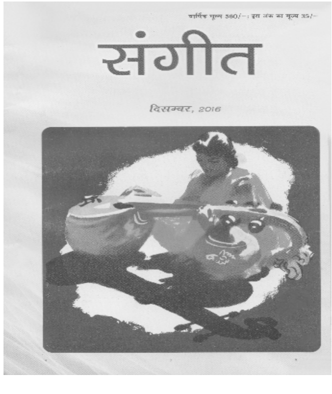

आलेख

सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक रचनाधर्मिता के पथ प्रदर्शक

गुरु शिष्य संवाद बिना है लय संवाद अधूरा,
गुरु-शिष्य संप्रेषण के साकार नवल तुम गुरुवर।
सदा शिष्य की भविष्य की चिंता में उलझे रहते,
जीवन मंथित अमृत तज पी गए गरल तुम गुरुवार।।

प्राचीन भारतीय कलाओं के संदर्भ में हर रोज बदलते नए-नए प्रतिमानों ने परंपरा प्राप्त पूर्व की शास्त्रीय अवधारणाओं को गुमनामी के हाशियों पर ले जाने का काम किया है। आज बाजारवाद के सिद्धांत ने संस्कृतिकर्मियों और कलावंताओं के सोच और नजरिये को कुछ इस हद तक प्रभावित किया है कि लोग क्षणिक लाभ के लिए भरपूर ध्वंसात्मक वृत्ति अपनाकर अपने आप को महान सृजनकर्मी होने की घोषणा करते हैं। कलाओं की विद्रूपता में ही सौंदर्य का एहसास दिलाया जा रहा है। धन के मद में लापरवाह उपभोक्ता कब तक इससे तृप्त होते रहेंगे, यह आने वाला भविष्य ही तय करेगा। ध्वंसात्मकता ही अब के समय में रचनात्मकता की पहचान बन चुकी है। ऐसे में शुद्ध एवं परिमार्जित कला तत्वों का ह्रास हो रहा है। इससे पहले कि सब कुछ अंधकार के गर्त में चला जाए हमें सावधानीपूर्वक अपने गुणीजनों की कृतियों को सुरक्षित एवं संरक्षित करना होगा।

बनारस पुरातन काल से संस्कृति एवं संगीत का प्रधान केंद्र रहा है। तबला वादन में बनारस घराना जगप्रसिद्ध है। यहां एक से एक मूर्धन्य तबला वादक हुए हैं, जिन्होंने इस पारंपरिक विद्या को गुरु-शिष्य परंपरा के तहत एक मिसाल कायम कर रखा है एवं देश-विदेश में भारत के गौरव में वृद्धि की है। उसी गौरवशाली कड़ी में तबला सम्राट पंडित छोटेलाल मिश्र का नाम आता है। आत्म विज्ञापन से सर्वथा दूर तथा आत्म चिंतन की कसौटी पर सचेत, जिज्ञासुओं को ज्ञान के स्रोत की ओर ले जाने वाले अप्रतिम साधक पंडित छोटे लाल मिश्र अनेक दृष्टि से तबला महापुरुष के रूप में आदर्श रहे हैं, जिन्होंने सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों को अत्यंत कलात्मकता एवं नवीनता के साथ अपने शोधपूर्ण चिंतन एवं रियाज के बल पर जीवनपर्यन्त प्रभावात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। पंडित छोटे लाल मिश्र संगीत जगत के ऐसे विरले कलाकार थे, जिन्होंने तबला को एक नई दिशा, नया रंग और सोच दी हैं। कई मौलिक विशेषताओं से समाहित पंडित मिश्र जी तबला जगत के कोषाध्यक्ष, संगत रत्न, रचनाकार, शास्त्रकार, सिद्धहस्त लेखक, आयोजक, संगीत चिंतक, रससिद्ध कलाकार एवं उदार गुरु के रूप में भी विख्यात थे। पंडित मिश्र जी की तबला वादन की सर्वाधिक विशेषता अद्‌भुत तैयारी तो थी ही, साथ ही बोलों का स्पष्ट निकास, वजन और माधुर्य भी था। तबले की कठिन बंदिशों को समुचित वजन से सब महत्वपूर्ण अक्षर एवं शब्दों को नजाकत के साथ आसानी से प्रस्तुत करना आपके वादन की सर्वाधिक विशेषता थी। आपके पास तबला वादन शैली की प्राचीन बंदिशों में विशेषकर बाँट, टुकड़ा, परन, गत एवं फर्दों का विशाल संग्रह था। तिहाइयों एवं कठिन लयकारियों का सुगम प्रस्तुतीकरण आपके वादन की विशेष प्रतिभा थी।

– डॉ. कुमार ऋषितोष

ताल के इस महर्षि का जन्म 12 अप्रैल, 1940 ई. को हुआ एवं 6 वर्ष की अल्पायु में ही इनके पिताश्री ने इन्हें देश के अद्वितीय तबला वादक बनारस घराने के प्रात:स्मरणीय 'ना धिन धिन ना' के जादूगर पंडित अनोखे लाल मिश्र से गुरु शिष्य परंपरा के अंतर्गत शिष्यता ग्रहण करने का श्रेय प्राप्त किया। तब से आप गुरु के श्री चरणों में बैठकर उनके जीवन-पर्यन्त पूरी लगन, कठोर अनुशासन तथा कठिन परिश्रम के साथ शिक्षा ग्रहण करते रहे। गुरु कृपा, पुत्रवत स्नेह, दृढ़संकल्प व प्रखर बुद्धिमता एवं कठोर साधना की

सहायता से कम ही समय में आपकी गिनती देश के श्रेष्ठ तबला वादकों में होने लगी।

हंसमुख एवं विनम्र स्वभाव के धनी, निर्मल संत हृदय तबला वादक पंडित मिश्र जी तबला वादन के क्षेत्र की एक ऐसी दिव्य ज्योति थे जिनके समक्ष समय रुक जाता था, वाणी मूक हो जाती थी एवं मस्तक स्वयं श्रद्धावनत हो जाता था। आपकी संगति से जहाँ एक ओर कोई नवोदित कलाकार धैर्य एवं साहस के साथ चैन से अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर सकता था, वहीं दूसरी ओर देश के प्रतिष्ठित एवं स्थापित कलाकार एक चमत्कारपूर्ण एवं मंत्रमुग्ध करने वाले प्रस्तुतीकरण का सौभाग्य प्राप्त करते थे। संगीत के अन्तर्निहित भावों को आत्मसात कर उसके अनुसार विलम्बित से लेकर द्रुतलय तक साथ देकर आत्मा के दिव्य सौंदय से साक्षात्कार करा देना ही आपकी संगति की विशेषता थी।

तबला जगत में उत्कृष्ट रचनाकार के रूप में ख्याति प्राप्त पंडित छोटे लाल मिश्र जी की कई रचनाएँ कलाकारों में लोकप्रिय एवं चर्चित हैं। विषम तालों में रचित आपकी रचनाएँ शास्त्रोक्त दृष्टिकोण से परिपूर्ण तो हैं ही, साथ ही साथ साहित्यिक छंद एवं अद्‌भुत लयात्मक सौंदर्य से श्रोताओं को दिव्य भाव का दर्शन कराते हैं।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत संकाय से प्राध्यापक के पद से सन् 2002 में सेवानिवृत्त पंडित मिश्र जी बनारस घराने के पहले तबला विद्वान रहे हैं, जिन्होंने गंभीर चिंतन व सृजन कार्य की अमर लेखनी द्वारा संगीत जगत को चार बहुमूल्य ग्रन्थ दिए हैं। आपके द्वारा रचित ग्रन्थों ने एक अमूल्य दुर्लभ कृतियों के रूप में दुनिया भर में लोकप्रियता हासिल की है। इन ग्रंथों में बनारस घराने की लुप्त हो रही पारम्परिक प्राचीन विद्या भी धरोहर के रूप में संचित है। वो ग्रंथ हैं- ताल प्रसून, ताल प्रबंध, तबला ग्रन्थ एवं प्लेइंग टेक्निक्स ऑफ तबला : बनारस घराना।

बनारस घराने की गुरुकुल शिक्षण पद्धति कायम रखते हुए, आपने अक्षय संगीत कोष से गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत अनेक योग्य शिष्यों को खुले हृदय एवं किसी भी धन की लालसा के बिना प्यार एवं अपनत्व की भावना से संगीत विद्या का महादान देकर विपुल यश अर्जित किया है। आपके शिष्यों की लम्बी समृद्ध परंपरा रही है। आपके शिष्य उच्च कोटि के कलाकार के साथ-साथ अनेक प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थाओं में भी कार्यरत हैं। देश-विदेश में आपके कई शिष्य अपने तबला वादन से ख्याति अर्जित करके आपके गौरव में वृद्धि कर रहे हैं।

आपके शिष्यों में प्रमुख नाम हैं- क्रमशः सर्वश्री गिरीन्द्र चन्द्र पाठक 'पप्पू जी', रामकुमार मिश्र, सुरेन्द्र चन्द्र पाठक, अविनाश कुमार रतनमन, उदय सिंह, देवव्रत बैनर्जी, सौम्यकांति मुखर्जी, संजय कुमार मिश्र, डॉ. प्रेम नारायण सिंह, डॉ. पार्थ चक्रवर्ती, डॉ. कुमार ऋषितोष, डॉ. महेन्द्र शर्मा 'बमबम', डॉ. शिवेंद्र प्रताप त्रिपाठी, डॉ. अरूप चटर्जी, डॉ. अजय कुमार, डॉ. नरेन्द्र पाठक, रजनीश तिवारी, धनंजय मिश्रा, दीपक मिश्रा, गोविन्द शुक्ला, जगनाथ सिंह, रोहित मिश्र, प्यारे लाल, राहुल भट्ट, दीपक सिंह, जगदंबा सिंह, शिव कुमार शुक्ला, डॉ. मनीष पाण्डेय, नवल सिंह, विजय कुमार संब्याल 'रंगीले ठाकुर', शैलेन्द्र कुमार सिन्हा, प्रिया तिवारी इत्यादि। विदेशी शिष्यों में- स्वर्गीय हेनरी रिट्ज़मैन (जर्मनी), होमनाथ, अच्युत राम भंडारी, अतुल पी. गौतम (नेपाल), चांग सू किम (कोरिया), मैथ्यू, मारिया स्टेलोन (यूएसए), नरेश पंडित, रूपक पंडित (हॉलैण्ड), ओमेरी (इज़राइल), डेनियल (स्विट्ज़रलैण्ड), सैनिया मासा (जापान), चन्द्रलाल, रंजन, प्रदीप(श्री लंका), ह्यूगो(फ्रांस), एड्रियन(इंग्लैंड), पीटर (स्वीडन) इत्यादि।

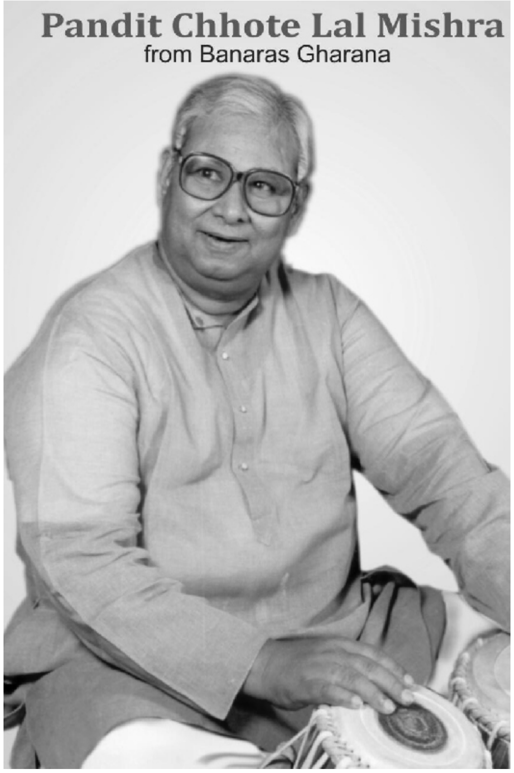

पंडित मिश्र अनेकानेक मान-सम्मान, सुरभित सुमन एवं विभिन्न उपाधियों से सम्मानित किये जा चुके हैं, जैसे- संगीत श्री, तबला महर्षि, नाद सम्राट, प्रख्यात तबला वादक, अखिल भारतीय कला रत्न, नवरस संगीत वाचस्पति अवार्ड (डी.लिट्.), पंडित विक्कू महाराज संगीत सम्मान, नेशनल फेलो अवार्ड (संस्कृति विभाग, भारत सरकार) एवं लीजेंडरी तबला मेस्ट्रो पंडित छोटे लाल मिश्र अभिनन्दन राष्ट्रीय संगीत समारोह (राष्ट्रीय संगीत समारोह)! गौरतलब है कि 10 वर्षों से दिल्ली में अखिल भारतीय संगीत समारोह का आयोजन पं. मिश्र जी के अभिनन्दन के रूप में मनाया जाता रहा है। उल्लेखनीय है कि पंडित मिश्र जी के नाम से

मोतिहारी में संगीत की उच्च शिक्षा हेतु 'पंडित छोटे लाल मिश्र संगीत कला महाविद्यालय' की स्थापना की गयी। गत फरवरी बनारस में मरणोपरांत 'पंडित छोटे लाल मिश्र संगीत अभिकल्प अकादेमी' की भी स्थापना हुई है। इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ में प्रोत्साहन हेतु मास्टर ऑफ म्यूजिक में उच्च श्रेणी प्राप्त छात्रों को 'पंडित छोटे लाल मिश्र अवार्ड' नाम से स्वर्ण पदक एवं 11,000/- की राशि भी घोषित की गयी है। संगीत जगत में एक कलाकार के लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। उल्लेखनीय है कि तबला महापुरुष पंडित छोटे लाल मिश्र के जीवन काल में ही उनके ऊपर सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पक्ष पर रीवा विश्वविद्यालय में शोध कार्य भी हुआ है। पंडित मिश्र जी की जीवनी विभिन्न पुस्तकों एवं पाठ्यक्रमों में विद्यमान है। आपकी तबला संगति व स्वतंत्र वादन की कैसेट, कॉम्पैक्ट डिस्क, लॉन्ग प्लेयर, वीडियो एवं डीवीडी भी उपलब्ध है।

पंडित मिश्रा जी 16 वर्ष की अल्पायु (1956) में ही देश के प्रतिष्ठित संगीत समारोह में आमंत्रित किये जाने लगे थे। 1970 से उच्च श्रेणी प्राप्त पंडित मिश्र ने आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन व आकाशवाणी संगीत सभाओं इत्यादि में सक्रिय रूप से तबला वादन किया है। पंडित छोटे लाल मिश्र राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगीत समारोहों में सुप्रसिद्ध कलाकारों के साथ संगत एवं स्वतंत्र वादन के प्रस्तुति के साथ ही विभिन्न संगीत शिक्षण संस्थानों और विश्वविद्यालयों में भी व्याख्यान सह प्रदर्शन विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में प्रशंसनीय कार्य किया है। आप सन् 1978 में अमेरिका के पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर रहे। उसी वर्ष आपने रवि शंकर म्यूजिक सर्किल, उस्ताद अली अकबर खान संगीत महाविद्यालय (कैलिफोर्निया), प्रिस्टन विश्वविद्यालय डेनमार्क, स्वीडन, तथा नार्वे में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् आपने कई बार विदेश की सांगीतिक यात्रा की, जिनमें अमेरिका में एशिया हाउस(न्यूयार्क), वेसलिअन विश्वविद्यालय(U.S.A.), शिकागो, सैन फ्रांसिस्को, सोनोमा स्टेट विश्वविद्यालय, कैलिफोर्निया (US 1978), बोस्टन, फिलेडैल्फिया, लंदन, पेरिस, नीदरलैंड, जर्मनी, जापान, स्विट्जरलैंड, हॉलैंड, कनाडा, और नेपाल में मनोहारी कार्यक्रम प्रस्तुत कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किया। सन् 1978 में संगीत के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए एशिया इंटरनेशनल के Who's who' में आपका नाम शामिल हुआ।

पंडित मिश्र ने राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर जिन सुप्रसिद्ध कलाकारों के साथ तबला वादन किया है, उनमें कुछ प्रमुख नाम हैं:- गायन में- उस्ताद बड़े गुलाम अली खां, उस्ताद निसार हुसैन खां, उस्ताद सलामत अली खां, पंडित वासवराज राज गुरु, विदुषी किशोरी अमोनकर, विदुषी निर्मला देवी, विदुषी गिरिजा देवी, विदुषी लक्ष्मी शंकर, पंडित जसराज, पंडित राम चतुर मलिक, पंडित सिया राम तिवारी, पंडित राजन साजन मिश्र, पंडित छन्नू लाल मिश्र इत्यादि। वाद्य में- प्रोफेसर राधिका मोहन मोइत्रा, पंडित रविशंकर, उस्ताद बिस्मिल्लाह खां, उस्ताद हालिम ज़ाफर खां, प्रो. वी.जी. जोग, डॉ. लालमणि मिश्र, पंडित हरि प्रसाद चौरसिया, पंडित एम.एस. गोपाल कृष्णन, पंडित बुद्धदेव दास गुप्ता, डॉ. एन. राजम, उस्ताद शाहिद परवेज, पंडित बुद्धादित्य मुखर्जी, उस्ताद निशात खां, पंडित विश्वमोहन भट्ट इत्यादि। कर्णाटक हिन्दुस्तानी जुगलबंदी में प्रोफेसर टी.वी. गोपाल कृष्णन, विद्वान उमयलपुरम के. शिवरामन इत्यादि।

आप एक निरहंकारी किन्तु स्वाभिमानी कलाकार थे। इसी वजह से जनता और संगीतज्ञों में आपका समान रूप से आदर है। कुछ कलाकार ऐसे होते हैं जो जनता में बहुत लोकप्रिय होते हैं, किन्तु कलाकार मंडली में उनकी कला प्रशंसित नहीं होती। इसके विपरीत कुछ कलाकार ऐसे होते हैं, जो कलाकार मंडली द्वारा प्रशंसित होते हैं, किन्तु जनता उनसे प्रभावित नहीं होती। बहुआयामी प्रतिभा एवं सरल स्वाभाव के धनी, मृदुभाषी पंडित मिश्र जी इन दोनों के अपवाद थे। एक कलाकार के लिए यह एक बहुत बड़ी इज़्जत है कि उनके चाहने वाले कलाकार एवं श्रोताओं की संख्या अधिक है। अपने चुटकुलों से आसपास रहने वाले चहेतों को लोटपोट एवं खुशनुमा वातावरण बनाये रखने वाले पंडित जी जीवन के अंतिम क्षणों में भी स्नान-ध्यान के पश्चात् नाश्ता किया, पान खाया, टी.वी. में हास्यप्रधान फिल्म के किसी दृश्य पर ठहाका लगाया और हँसते-हँसते सभी के चहेते पंडित मिश्र जी ईश्वर के चहेते हो गए। वह क्रूर दिन था 15 अक्टूबर 2013, जिस दिन बनारस घराने के महान तबला सम्राट पंडित छोटे लाल मिश्र जी नाद में ब्रह्मलीन हुए।

उल्लेखनीय है कि फरवरी 2014 बनारस में मरणोपरांत 'पंडित छोटे लाल मिश्र संगीत अभिकल्प अकादेमी' की भी स्थापना हुई है। इस अकादेमी के तहत आयोजित संगीत समारोह में पं. राजन साजन मिश्र के गायन एवं पं. कुमार बोस के स्वतंत्र तबलावादन से संगीतमय श्रद्धांजलि दी गई। बनारस में 'कला सृष्टि' एवं 'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र' द्वारा प्रतिवर्ष पं. छोटे लाल मिश्र जयन्ती संगीत समारोह मनाया जाता है।

इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ एवं संगीत संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोत्साहन हेतु मास्टर ऑफ म्यूजिक में उच्च श्रेणी प्राप्त छात्रों को पंडित छोटे लाल मिश्र अवार्ड के नाम से स्वर्ण पदक एवं 11,000/- की राशि भी घोषित किया गया है।

श्रीलंका के संगीत रसिक ने इनके जीवन वृत्त पर एक डाक्यूमेंट्री भी प्रकाशित की है।

- संगीत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007 मो.-98101 49676

आलेख

संगीत में अभ्यास (रियाज़) का तरीका

- प्रो. (पं.) सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'

संगीत में अभ्यास का विशेष महत्व है। इसके बिना संगीत में सफलता असंभव है। संगीत जगत के सभी गुणीजनों ने रियाज को प्रधानता देते हुए संगीत में सभी वर्ग के छात्रों को "रियाज करना" अनिवार्य बताया है। रियाज़ के वास्तविक तरीकों को छुपाया है। गुणीजन उन तरीकों को सिखाने में हमेशा कृपण रहे हैं। इसीलिये मैं चाहता हूँ कि संगीत जगत के सभी छात्र-छात्राओं को उन तरीकों से अवगत कराऊँ, जिनके अभ्यास से उन्हें अधिक-से-अधिक सफलता प्राप्त हो सके। सर्वप्रथम रियाज़ या अभ्यास क्या है? यह समझ लेना आवश्यक है। इसकी सरल परिभाषा इस प्रकार है- "किसी भी प्रायोगिक विधा को आत्मसात करने की सतत क्रिया जो अबाध गति से चलती रहे उसे रियाज़ या अभ्यास कहते हैं।"

उपरोक्त परिभाषा में दो बातें छिपी हुई हैं-

1. धैर्य   2. मेहनत।

छात्र को धैर्य रखना चाहिये एवं नियमानुसार मेहनत अनिवार्य है। चूँकि मन अत्यंत चंचल एवं गतिशील है अत: मेहनत करने में बाधक है। इसके साथ ही संगीत में सफलता दिखने की अवधि काफी लंबी होती है इसलिये धैर्य छूटता है। मन उधर-इधर भटक कर फिर अपने स्थान पर आ जाये।

यथा - "मन जाये तो जान दै दृढ़कर राख शरीर।"

अत: मन एवं शरीर दोनों पर नियंत्रण रखकर ही अभ्यास किया जा सकता है जो लंबी अवधि के बाद साधना के रूप में परिवर्तित हो जाता है एवं तभी छात्र के गले में वह निखार आने लगता है जिसकी कल्पना संगीत के सभी छात्र प्रारंभ से ही करते हैं।

1. षड्ज का अभ्यास :-

षड्ज का अभ्यास कम-से-कम दस मिनट करना चाहिये। इस अभ्यास में श्वांस-प्रश्वांस क्रिया को आधार मानना चाहिये। षड्ज को संपूर्ण श्वांस के साथ भरा जाये। यदि षड्ज भरते समय आवाज़ में कंपन आता है तो श्वांस छोड़कर दोबारा यही क्रिया अपनानी चाहिये। यही क्रम अन्य सभी स्वरों पर लागू रहेगा। इसके बाद एक श्वांस में दो स्वरों का अभ्यास करना चाहिये एवं आरोह-अवरोह कहना चाहिये। उससे स्वरों का स्थान गले में बनता जायेगा एवं लय का अंदाज मस्तिष्क में बैठेगा। प्रारंभ से ही स्वरोच्चार पर विशेष ध्यान देना अनिवार्य है। सभी स्वरों को दीर्घ बोलना आवश्यक है। अर्थात्- सा, रे, गा, मा, पा, धा, नी, सां। इस प्रकार स्वरों के उच्चारण करने से आवाज का विकास होगा।

2. अभ्यास का समय :-

अभ्यास या रियाज़ किस समय किया जाये उसका संगीत में विशेष महत्व है। साधारणतया अभ्यास किसी भी नियत समय पर किया जा सकता है वह अपना प्रभाव दिखायेगा ही, भले ही देर से दिखाये। प्रात: काल का समय संगीत के अभ्यास के लिये अमृत के समान है। इस समय शरीर के अवयव एवं स्वरयंत्र (vocal chords) मुलायम रहते हैं एवं अभ्यास का सीधा प्रभाव उन पर पड़ता है, जिससे कम समय में अधिक उन्नति के योग बनते चले जाते हैं। साथ ही अन्य दूसरे व्यवधानों से भी छुटकारा अपने-आप मिल जाता है। अत: प्रात: काल का समय ही अभ्यास के लिये अति-उत्तम है। छात्र को उपरोक्त समय पर अभ्यास करने की आदत डालना चाहिये।

3. सरल से जटिल अलंकारों का अभ्यास लय के साथ :-

इस क्रिया में लय पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आरंभ में श्वांस-प्रश्वांस क्रिया के माध्यम से स्वरों का अभ्यास बताया गया। हाथ से ताली देकर अलंकारों का अभ्यास करना चाहिये। सर्वप्रथम एक ताल (ठोके) में एक स्वर ही गाना चाहिये। बाद में एक ताल (ठोके) में दो स्वर गाना या अलंकार को दुगुन में गाना चाहिये। इसके बाद एक (ठोके) में चार स्वर गाना या अलंकार को चौगुन में गाना चाहिये। यहाँ पर विशेष ध्यान इस बात पर देना है कि स्वरस्थान बेसुरे न होने पायें। लय (दुगुन-चौगुन) उतनी ही रखना चाहिये जिससे स्वरस्थान सही लगते रहें एवं नियत स्थान पर ही लगें। इसके लिये आरंभ में सरल अलंकारों का अभ्यास ही करना चाहिये। जो क्रमिक पुस्तक पहली में नं. 1 से 8 तक दिये गये हैं। नं. 9 से 15 तक के अलंकार कठिन अलंकारों की श्रेणी में आते हैं। इसके आगे जो अलंकार हैं

वे लय की दृष्टि से कठिन माने जाते हैं। अत: उनका अभ्यास करना चाहिये। ध्यान रहे कि ये सभी अलंकार दुगुन या चौगुन में ही अपनी सामर्थ्य के अनुसार गाना अनिवार्य है। इसके बाद और कठिन अलंकारों को अभ्यास करना चाहिये, जैसे-

1. सागरेग मगरेसा
2. सागरेग मगरेग रेगरेसा सारेगम
3. सारेगरेसा म
4. सारेगम मगरेग रेगरेसा सारेगम आदि।

इस प्रकार अलंकारों का लय के साथ अभ्यास करने से स्वरयंत्र पर सीधा प्रभाव पड़ेगा। इसके कई लाभ हैं जो संगीत में सफलता प्राप्त करने में सहायक हैं:-

1. स्वर ज्ञान
2. गले की तैयारी
3. तानों में दाना बनना
4. लय का ज्ञान होना, आदि प्रमुख हैं।

4. मुद्रा दोष :-

उपरोक्त तरीके से अभ्यास करते समय गायन की मुद्रा पर ध्यान देना आवश्यक है। गाते समय मुखाकृति बिगड़ना नहीं चाहिये। चूँकि गायक में इस प्रकार के मुद्रा दोष अक्सर पाये जाते हैं। अत: उनसे बचने के लिये दर्पण का उपयोग लाभदायक है। मुद्रा दोष होने से स्वरोच्चार में भी अंतर पड़ता है एवं श्रोताओं पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। स्वरोच्चार ग़लत होने से स्वरयंत्र का विकास अवरुद्ध होता है। अत: स्वरोच्चार हल्के से होना चाहिये। ताकत का प्रयोग न हो ना ही मुखाकृति टेढ़ी-मेढ़ी हो, यहाँ तक कि आंखें भी बंद न की जायें, ना ही हाथ-पैर पटके जायें। इस प्रकार गायन में मुद्रा दोष को रोकना चाहिये एवं गायन को सुदर्शन बनाने का प्रयास करना चाहिये।

5. सरगम एवं बंदिशों का अभ्यास :-

इसके बाद संपूर्ण रागों की (जितने आते हों) सरगम एवं बंदिशों (ख्याल-तराना आदि) का अभ्यास करना चाहिये। ध्यान रहे संगीत में पाठान्तर का विशेष महत्व है। अत: बंदिशें ज्यादा-से-ज्यादा रागों की याद ही होना अनिवार्य है। अन्यथा प्रदर्शन किस विधा का होगा? अलंकारों या सरगम का प्रदर्शन नहीं हो सकता है। बंदिशें यदि याद नहीं हैं तो उपरोक्त तरीके से की गई तैयारी का कोई महत्व नहीं होगा। अत: अलंकारों के पश्चात् सरगम एवं बंदिशों का अभ्यास नियमित करें।

6. अंत में :-

इतना संपूर्ण अभ्यास या रियाज़ करने के बाद किसी भी एक राग का गायन (आलाप-तानों सहित) करना चाहिये। यह अभ्यास तबला संगत के माध्यम से होना आवश्यक है। यदि तबला संगत की व्यवस्था सामर्थ्य के बाहर है तो चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। बिना तबला संगत के भी राग का गायन का अभ्यास किया जा सकता है। इस प्रकार उपरोक्त वर्णित तरीके से संगीत का नियमित अभ्यास कुछ वर्षों तक करते रहने से निश्चित ही सफलता मिलेगी। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।

97, आनन्द भवन, सर्वधर्म कॉलोनी, सी-सेक्टर, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.)
मो. 09425673106

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने
और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने
की खुराक में खर्च क्यों न करें !

प्रबंध संपादक

कला समय

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

आलेख

भारतीय संगीत-शिक्षण के लाभकारी 'कैप्सूल'

- डॉ. मधु भट्ट तैलंग

वर्तमान युग भारतीय समाज और उसमें व्याप्त कलाओं के संक्रमण का काल है। पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन, घटते नैतिक मूल्य, बाज़ारवाद, व्यावसायिकता और उससे आगत ग्लैमर, राजनीतिकरण या सरकारीकरण, वैश्वीकरण एवं बढ़ते व्यक्तिवाद ने भारतीय ज्ञानात्मक विद्याओं एवं कलाओं के शिक्षण एवं सम्प्रेषण को भी बहुत हद तक प्रभावित किया है। लगभग 35 वर्षों से मंचीय कलाकार होने के साथ-साथ सिराही, वनस्थली विद्यापीठ एवं संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय आदि शिक्षण-संस्थानों एवं अपने गुरु ध्रुवपदाचार्य पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग द्वारा स्थापित संगीत-संस्थाएँ 'रसमंजरी संगीतोपासना केन्द्र' एवं 'इन्टरनेशनल ध्रुवपद धाम ट्रस्ट' में संगीत-शिक्षण के सुदीर्घ काल के लगभग 35 वर्ष संगीत-शिक्षण में व्यतीत हुए। अतएव यह आलेख दूसरे ग्रंथों के संदर्भों पर आधारित नहीं है अपितु अपने जीवन के अनुभवों का परिणाम है.

संगीत-शिक्षण के प्रमुख दो ही घटक हैं 1. शिक्षक, 2. शिष्य। अतएव शिक्षा का निर्बाध एवं आनन्ददायी आदान-प्रदान दोनों के परस्पर संबंधों पर आधारित होता है। इस दिशा में एक शिक्षक का पारिवारिक, क्षेत्रीय एवं सामाजिक परिवेश जितना मायने रखता है उतना ही शिष्य का भी क्योंकि वही दोनों के व्यक्तित्व-कृतित्व को निर्धारित करता है। गुरु-शिष्य का स्वभाव एवं व्यवहार ही शिक्षण का कलेवर, उसका स्तर एवं उसकी सफलता का निर्धारण करता है।

वर्तमान तक शिष्य का जो भी आकार-प्रकार अभी तक निकल कर आया है उसे संगीत के संदर्भ में साररूप में निम्न बिन्दुवार देखा जा सकता है -

1. विद्यार्थी में सांगीतिक प्रतिभा ईश्वरप्रदत्त होती है, चाहे वह गांव या शहर कहीं से भी हो अथवा घरानेदार हो या नहीं, यह वरदान किसी को भी प्राप्त हो सकता है एवं **'जो साधे सो पावे गुणीजन कहावे'** यह उक्ति चरितार्थ होती है।

2. हर विद्यार्थी का सामाजिक, पारिवारिक, भौगोलिक एवं आर्थिक परिवेश, साहचर्य एवं सहभागिता अलग-अलग होती है एवं विद्यार्थी का स्वभाव, ग्राह्यता, तत्परता, रुचि या लगन एवं ध्यान, के स्तर की कमी या अधिकता, उस पर ही निर्भर करती है। विद्यार्थी की मानसिक संवेदना, मानसिक वृत्ति, सुखात्मक-दुखात्मक अनुभूतियां, चेतनता, भाव-संवेग, कल्पना, रुचि-ध्यान आदि सभी कुछ उसी से प्रभावित होती है उससे संचालित विद्यार्थी के जीवन के उद्देश्य की अडिगता, निश्चय अथवा दिग्भ्रम ही शिक्षण की दिशा को निर्धारित करता है अतएव शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों स्तर ही विद्यार्थी की प्रेरणा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

उपरोक्त परिवेश के सुप्रभाव-दुष्प्रभाव से विद्यार्थी में विनम्रता, श्रद्धा, अनुशासन, संयम या धैर्य, सहनशीलता की कमी या अधिकता देखी जाती है, उसके अभाव में शिष्य को ज्ञान का पूरा लाभ नहीं मिल पाता है एवं सफलता के अनुपात में भी कमी आ जाती है।

3. विद्यार्थी को हर स्तर पर प्राप्त होने वाली ज़्यादा या कम सुविधा भी विद्यार्थी की साधना को प्रभावित करती है, विद्यार्थी उससे या तो आरामपरस्त हो जाता है, पदभ्रष्ट हो जाता है, मार्ग से विरत हो जाता है या इसके विपरीत सुविधा की प्राप्ति के प्रयास में और भी मेहनती, साहसी, आत्मनिर्भर, या स्वावलम्बी एवं ऊर्जावान् आदि गुणों का साधक एवं पोषक हो जाता है।

4. पहले ज़माने में गुरुकुल में बच्चे को माता-पिता यह कह कर छोड़कर जाते थे कि 'हाड़ हमारा, मांस या बूटी तुम्हारी' यानी अब उसका पोषण आपके अधीन है, यह हमारी औलाद ज़रूर है किन्तु उसे संस्कारित, तपस्या एवं मेहनत द्वारा मोटा-पतला करने की अब आपको पूर्ण स्वतंत्रता है अतएव गुरु को दी गई स्वतंत्रता रूपी इस सम्मान से विद्यार्थी भी भलीभांति महसूस कर लेता था कि शिक्षक या गुरु का महत्व क्या है एवं एकनिष्ठ भाव से वह उनका ही अनुकरण एवं अनुसरण करके स्वयं को सार्थक दिशा की ओर साधनारत करता था। गुरु को यह भी स्वतंत्रता थी कि वह उसका भरण-पोषण किसी भी तरह करे एवं जब विश्वस्त हो जाये कि विद्यार्थी अब उसकी आशानुरूप दक्ष हो गया है तभी उसे समाज के खुले मंच पर गुणीजन के समक्ष प्रस्तुत कर उनका अनुमोदन प्राप्त करता था।

किन्तु अब शिक्षण संस्थाओं की अकादमिक

व्यवस्थाओं, पाठ्यक्रम एवं उससे इतर माता-पिता के अधीन अपेक्षाकृत अधिक होता है। माता-पिता ज़्यादातर उसको व्यावसायिक एवं आर्थिक मूल्यांकन के अन्तर्गत आंकते हुए विद्यार्थी की तालीम और साधना के काल को स्वयं निर्धारित करते हैं। आज धैर्य, संयम, निष्काम अथवा फल की परवाह बिना की गई साधना का अब अभाव होता जा रहा है।

5. यह काल जनसंचार माध्यमों के अनावश्यक दबाव का हिस्सा बनता जा रहा है। पहले समय में गुरु समय पूर्व विद्यार्थी को प्रचारित नहीं करते थे एवं विद्यार्थी की संतुलित श्लाघा के साथ बाह्य प्रभावों से भी मुक्त रखते हुए उसकी कमियों एवं खूबियों के उचित सामंजस्य द्वारा उसकी सुधारात्मक दिशा में कार्य करते थे किन्तु अब श्लाघा को अपेक्षाकृत स्थान ज्यादा होने से सुधार का अनुपात भी घटा है क्योंकि आज माता-पिता एवं विद्यार्थी अपने बच्चे की एवं स्वयं की कमी को बहुत कम स्वीकारते हैं यानी गुरु स्वयं ही परीक्षित रहता है।

पहले युग में 20-22 वर्षों तक जनसंचारों और विद्यार्थी के मध्य नाता नहीं होता था और ना ही प्रतियोगिताओं में भाग लेने का आग्रह, इससे विद्यार्थी विशुद्ध रूप से साधना की ओर ही शत-प्रतिशत संलग्न रहता था किन्तु यह वर्तमान में विद्यार्थी एवं माता-पिता दोनों के लिए आकर्षण का विषय हो चुका है एवं वे धन एवं यश लिप्सा के प्रति संलग्न रहते हुए अनुशासित शिक्षण के प्रति संजीदा एवं आग्रहशील रहते हैं अतएव शिक्षण चुनौती बनता जा रहा है।

6. आज विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों के प्रति यह भी चुनौती बनती जा रही है कि आज यदि ठुमरी लोकप्रिय है तो ध्रुवपद सीखने वाले को ठुमरी भी आनी चाहिए, ऐसा अन्य विधाओं के लिए भी है अतएव शिक्षण का दायरा और चुनौतियों के साथ आगे बढ़ा है इसमें एक संकट बना रहता है कि किसी गायकी के अनुकूल आवाज़ के गुणधर्म के साथ अन्य गायकी के विशेषणों पर अतिरिक्त कार्य करने से कई बार किसी विद्यार्थी की आवाज़ को किसी विशिष्ट घराने या शैली की गायकी की अनुकूलता के विरुद्ध ढाल दिया जाता है, जिससे कई बार उसके अनुकूल दक्षता या रसपूर्णता का अभाव हो जाता है। इस ज़माने में कई गायक हैं जिनकी आवाज़ ग़ज़ल, मांड एवं गीत के अनुकूल होते हुए भी वे स्वयं को शास्त्रीय संगीतज्ञ कहलाना पसंद करते हैं, इससे उनकी गायकी सुगम व शास्त्रीय दोनों के प्रति ही प्रश्नचिन्ह बनाये रखती है।

7. संगीत की दृष्टि से बात करूंगी कि पहले गुरुकुल की दिन-रात की 20-21 वर्षों की शिक्षण-पद्धति के अन्तर्गत संचालित पाठ्यक्रमों को अब शिक्षण-संस्थानों में अन्य विषयों के पठन-पाठन के साथ मात्र 6-8वर्षों के 4-6 घंटों में समेटे जाने के कारण पाठ्यक्रम में प्रारंभिक ज्ञान एवं अभ्यास का स्थान बहुत कम होने से वह स्तरानुकूल नहीं प्रतिभासित होता है। कई बार स्कूलों में संगीत नहीं होने से सीधे महाविद्यालय में प्रवेश लेने पर दूसरे-तीसरे वर्ष में ही दरबारी, तोड़ी, सोहनी, बसंत गौडसारंग एवं केदार जैसी रागों को सीधा सीखना व गाना पड़ता है लिहाज़ा वे मास्टर डिग्री तक भी इन्हें नहीं साध पाते।

8. आज शिक्षण में नैतिक मूल्यों का निरन्तर ह्रास हो रहा है।

9. आज शिक्षण व्यक्तिपरक ज़्यादा हो गया, सामूहिकता की भावना का लोप होता जा रहा है, इस दृष्टि से उसके लिए अपनी रोज़ी-रोटी का मुख्य स्रोत स्वयं की नौकरी के प्रति ज़िम्मेदारी ही गौण होती जा रही है एवं उससे हटकर वह अपना व्यक्तिगत विकास ही मुख्य होता जा रहा है।

10. आज इस प्रायोगिक विद्या की ज़्यादातर नियुक्तियां एवं प्रमोशन प्रायोगिक की अपेक्षा 95 प्रतिशत शास्त्र पर ही आधारित होने से हम विद्यार्थी को पूर्ण संतुष्ट नहीं कर पा रहे, इसलिए भी विद्यार्थी स्कूल-कॉलेजों से विरत होकर अपना रास्ता उससे इतर ढूंढ़ रहा है। ऐसे शिक्षक हर वर्ष एक ही आलाप-तान एवं बन्दिश के अध्यापन द्वारा शिक्षण को नीरसता प्रदान कर रहे हैं।

11. एक और संकट है कि आज भी सरकारी एक अकादमिक क्षेत्र में संगीत को पूर्ण अकादमिक न मानते हुए उसे नाच-गाने या मनारंजन के लिए ही मानी जाने वाली विचाराधारा के दायरे तक सीमित कर दिया गया है। इस कारण से उसके प्रति कैरियर या 'जॉब ओरिएन्टेड' माने जाने वाली अवधारणा अभी तक नहीं स्थापित हो पाई है, इस कारण से आज स्कूलों में संगीत विषय को स्थान नहीं दिया जा रहा, कला-शिक्षक या प्राध्यापक के पदों की नियुक्ति घटती जा रही है एवं विद्यार्थी एवं माता-पिता का मोह भी उससे हटता जा रहा है। प्रतिभावान छात्र का आकर्षण टीवी चैनलों की ओर उन्मुख हो गया एवं वह किसी अन्य क्षेत्र को अकादमिक अध्ययन एवं नौकरी के लिए चुनता है, जिससे विद्यार्थी को शिक्षण के प्रति स्वयं ही संशय एवं अविश्वास बना रहने से वह सकारात्मक परिणाम प्राप्त

नहीं हो पाता। मेरे बहुत से शिष्य हैं जो डॉक्टर एवं इंजीनियर हैं और पर्याप्त समय नहीं दे पाने के कारण अच्छे प्रस्तोता नहीं बन पाये। संगीत भी 'शॉर्टकट' की मांग करने लग गया है। इस दृष्टि से वह चुनौतीपूर्ण होता जा रहा है।

इसमें मेरे मत से अब शिक्षक की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी हो गई है कि वह इन हालातों में भी संगीत-शिक्षण को एक सार्थक दिशा, मुकाम एवं नये आयाम दे, इस दृष्टि से मैं ''Teaching Aptitude Capsules'' के नाम से कुछ समाधान समक्ष रखूंगी, मैं उन बिंदुओं को ही समक्ष रखूंगी जिनके अभाव से हमारा शिक्षण बीमार व्यक्ति की तरह अपने कार्य को उचित परिणाम नहीं दे पा रहा है अतएव निम्न कैप्सूल रूप बिंदु सुधारात्मक दिशा में निश्चित परिणाम दे सकेंगे-

1. विद्यार्थी-शिक्षक के मध्य समुचित शिक्षा के आदान-प्रदान के लिए आवश्यक है कि वे एक-दूसरे के परिवेश को समझें एवं परस्पर मुख्य समस्याओं की जानकारी प्राप्त कर उस दिशा में समाधान के साथ शिक्षण को आगे बढ़ायें। शिक्षक की ज़्यादा भूमिका है कि वे विद्यार्थी की प्रतिभा से ईर्ष्या न करके उसे प्यार व सम्मान दें जिससे निश्चय ही विद्यार्थी की आपके साथ संलग्नता बढ़ेगी। विद्यार्थी की संवेदना को समझते हुए उसकी विपरीत संवेगात्मक प्रतिक्रिया के प्रति धैर्य रखते हुए एवं उसे समझते हुए धीरे-धीरे सुधार करना चाहिये जिससे विद्यार्थी भी धैर्य रखेगा एवं निश्चय ही अपनी कमी को समझेगा एवं सुधारेगा।

2. विद्यार्थी के अच्छे कार्यों की प्रशंसा एवं बुरे कार्यों की समयानुसार स्पष्ट आलोचना करें किन्तु मनोवैज्ञानिक रूप से समीक्षा के दायरे में ही, यह मात्र तभी संभव है कि शिक्षक विद्यार्थी के दिल में पहले अपने लगातार प्यार, सद्भाव, धैर्य एवं सहयोग से उसका सम्मान अर्जित कर ले।

3. शिष्य व गुरु दोनों समाज के प्राणी हैं अतएव हर कार्य समाज, व राष्ट्र के कल्याण से ही जुड़ा है इस विचार से यदि शिक्षण करेंगे तो ही हम उसके प्रति निष्काम सेवा करेंगे एवं उस सेवा से हम अपने कार्य को और सुन्दर परिणाम तक पहुंचायेंगे।

4. शिक्षक को राष्ट्र की समस्याओं के प्रति जागरूकता के साथ अपने शिक्षण-संस्थान को परिवार मानते हुए उसी भावना से उसे सुन्दर बनाने हेतु समर्पित होना चाहिये। अपने विद्यार्थियों के साथ एवं सहकर्मियों के प्रति भी सहयोग आवश्यक है तभी स्वयं के ज्ञान का भी विस्तार कर पायेगा एवं स्वस्थ माहौल में विद्या का ऊर्जावान होकर प्रसार कर सकेगा।

5. विद्यार्थी की असफलता को उससे ज़्यादा शिक्षक स्वयं की बहुत बड़ी असफलता मानते हुए ही शिक्षण करें।

6. शिक्षक करुणा एवं दयावान होगा तभी वह आत्मीयता एवं संवेदनशीलता के साथ विद्यादान कर सकेगा, तभी विद्यार्थी बिना किसी हिचकिचाहट के उससे परामर्श सहित निराकरण कर सकेंगे।

7. शिक्षक विद्यार्थी को शिक्षण से पहले भारत का आदर्श नागरिक बनने की ओर प्रेरित करें तब सभी काम अपने आप आसान हो जायेंगे। स्वयं चरित्रवान एवं नैतिक बन उसे भी उस ओर उत्प्रेरित करें।

8. शिक्षक को न ज़्यादा उदार होना चाहिए और न ज़्यादा कठोर। शिक्षक यदि प्रशंसा के साथ विद्यार्थी की आलोचना भी करता है तो शिक्षक विद्यार्थी को सुनने-समझने के लिए अतिरिक्त समय दे, एवं सहनशील बन उसे आसानी से सुनते हुए उसकी जिज्ञासा को शांत भी करे। उसकी पाठ्येतर अन्य जिज्ञासाओं के निराकरण को भी अपना फर्ज़ समझे। शिक्षक विद्यार्थी के दोषों से ज्यादा गुणों पर ज्यादा दृष्टि रखें।

9. शिक्षक को विद्यार्थियों की परस्पर भिन्नता को ध्यान में रखते हुए शिक्षक करना चाहिये। उनकी व्यक्तिगत भिन्न रुचियों, उनकी योग्यता, एवं विशिष्ट क्षेत्र में उनके कौशल को पहचानते हुए तद्नुरूप शिक्षण करें व उसमें निष्पक्षता एवं ईमानदारी रखें।

10. यद्यपि शिक्षा और राजनीति सदैव सहचर रहे हैं किन्तु उनका संतुलन आवश्यक है। यद्यपि संगीत अपने आप में ऐसा विषय है जो कि उससे दूर नैतिकता को जन्म देता है अतएव शिक्षक को उससे दूर रहकर मात्र संगीत की नयी-नयी अध्यापन विधि की खोज करते हुए अधिक समय उसमें ही देना चाहिये क्योंकि राजनीति विचारों में नकारात्मकता के साथ संगीत से विरत करते हुए उसे नवोन्मेषी बनाने में विघ्न पहुंचाती है। याद रहे कि नकारात्मकता कभी भी उच्च्व साधक एवं सृजनकार को पैदा नहीं कर सकती।

11. शिक्षक विद्यार्थी को सिर्फ किताबी ज्ञान तक ही सीमित करके किताबी कीड़ा न बनाये अपितु सैद्धान्तिकता के साथ पूर्ण व्यवहारी बनाये। शिक्षण के साथ स्वाध्यायी बनाये, संगीत से इतर अन्य समसामयिक अध्ययन एवं ज्ञान की ओर प्रेरित करे। शिक्षक को स्वयं की भी लाइब्रेरी बनानी चाहिये, जिससे ज्ञान के प्रति निरन्तर विद्यार्थी व स्वयं की संलग्नता बनी रहेगी।

12. शिक्षक को विद्यार्थी की पाठ्येतर या पाठ्य सहगामी अन्य क्रियाओं एवं गतिविधियों में भी रुचि व सक्रियता आवश्यक है।

13. शिक्षकों को गोष्ठी व सेमिनारों में लगातार भागीदारी रखना भी आवश्यक है, जिससे वह नयी-नयी प्राप्त जानकारियों का लाभ विद्यार्थियों को भी दे सकेगा।

14. एक प्रायोगिक दक्ष शिक्षक को चाहिये कि वे लगातार संगीत-विषयों पर लेखन कर संगीत का आमजन में जागृति के साथ प्रचार करें एवं उसके साथ एक लेखक संगीतज्ञ को चाहिये कि वह प्रयोग को भी साधते हुए अपनी लेखनी को और प्रभावपूर्ण एवं सार्थकता प्रदान करते हुए समाज को उससे प्रेरित करें।

15. शिक्षक समाज एवं राष्ट्र का अहम अंग है अतएव उसकी हर क्रिया राष्ट्र हित से जुड़ी होती है। याद रहे कि शिक्षक की छवि समाज में आदर्श से इतर कोई दूसरी नहीं है अतएव वह ऐसा अनैतिक उदाहरण पेश ना करें जिसे समाज हित के प्रतिकूल समझा जाये। यह तय समझना चाहिये कि वह मात्र नैतिकता के आधार पर ही उच्च शिक्षक बन सकता है उसे चारित्रिक आदर्श स्थापित करने में सदैव तत्पर रहना पड़ेगा अतएव शिक्षक को व्यक्ति से ज्यादा सामाजिक हित को साधना होगा क्योंकि वह सदैव समाज की भावी पीढ़ी विद्यार्थी के लिए प्रेरणादायी एवं आदर्श होता है। इसके अलावा शिक्षक जो भी वायदे, निर्णय एवं घोषणा आदि करे वह उसका स्वयं पूर्णरूपेण निर्वाह भी करे एवं उसमें अडिग भी रहे। शिक्षक सदैव याद रखे कि वह व्यक्ति नहीं अपितु राष्ट्र है इसलिए समय पड़े तो वहाँ आत्महित से ऊपर उठकर वह प्रशासन एवं राष्ट्रनीति-निर्माताओं को किसी न किसी प्रयास के माध्यम से विषय के प्रति समझ, महत्ता व जागरूकता भी पैदा करे एवं सतर्कता और समझदारी से उसके गुण-दोष पर प्रकाश भी डाले जिससे प्रशासन की उसके प्रति नकारात्मक की अपेक्षा सकारात्मक सोच बने। विद्यार्थी का ज्यादा समय शिक्षक के पास गुजरता है अतएव समाज के इन भावी कर्णधारों के विकास के प्रति शिक्षक हर पल पूर्ण समर्पित हों।

16. शिक्षक विनम्र एवं उदार बनें। शिक्षक अपनी कमियों को भी समझें, स्वीकारें एवं सुधारें, तभी वह अन्य को भी न्याय दे सकेगा एवं इससे वह विद्यार्थियों की गलतियों को भी माफ कर सकेगा। वह स्वयं अनुशासित होगा तभी अनुशासन भी स्थापित कर सकेगा। वह किसी विद्यार्थी विशेष पर केन्द्रित न होकर सभी में समदृष्टि से निष्पक्ष कार्य करे, उसकी सिफारिश की अपेक्षा किये बिना उसके कार्य-निष्पादन को ही पूर्ण आधार बनाये। इस मूल्यांकन में पूर्ण ईमानदारी व आत्मदृढ़ता होनी चाहिये। स्वयं की गलतियों से सबक लेकर अपने सद्कार्यों द्वारा विद्यार्थियों की सबक का अनुप्रेरक बनें, इससे विद्यार्थी में भी उसकी न्यायप्रियता के प्रति विश्वास एवं सम्मान की और बढ़ोतरी होगी।

17. शिक्षक को चाहिये कि वह घर एवं बाहर दोनों स्थानों पर नपा-तुला व्यवहार करे क्योंकि उसका प्रत्येक कार्य उसके चरित्र एवं व्यवहार का नियमित एवं स्थाई हिस्सा बन जाता है किन्तु उचित कार्य के लिए संकोच न करके निर्भीकता से उसे सही दिशा देना चाहिये एवं शिक्षक को हर कार्य पूर्ण व्यवस्थित एवं नियोजित रूप से करना चाहिये। गीता के उपदेशों को पूर्ण आत्मसात् कर छात्रों से किसी भी स्वार्थ की कामना से दूर निष्काम शिक्षण, परीक्षण एवं उसके समस्त विकास कार्य करना चाहिये।

18. यदि किसी भी कारण से विद्यार्थी से उसके संबंध में कटुता आ गई है तो यह विश्वास करना चाहिये कि वह ही अन्तिम सत्य नहीं अपितु वह भविष्य में सुधार कर मधुर बनाया जा सकता है और यह ध्यान रहे कि ये छात्र ही आपको भविष्य में पहिचान एवं गौरव दे सकेंगे।

19. वातावरण चाहे कैसा भी हो, शिक्षक अपनी रुचि, ऊर्जा, ध्यान, लगन, सद्भाव एवं तत्परता से उसे सुधार सकता है। शिक्षक का यह गुण विद्यार्थी में भी विषय के प्रति अभिरुचि व लगन पैदा कर सकेगा। शिक्षक सदैव प्रसन्न मुद्रा व उल्लासपूर्ण माहौल के निर्माण से वातावरण को अनुकूल व खुशनुमा बना सकता है। सिर्फ पठन-पाठन तक सीमित न रहकर वातावरण के समायोजन के लिए भी प्राथमिकता से कार्य करना चाहिये और यह मानकर कार्य करें कि उसका यह पठन-पाठन ही विद्यार्थी की शैक्षणिक एवं व्यावहारिक हर समस्या की कुंजी है। उत्साह, रुचि व तल्लीनता ही सफलता की कुंजी है अतएव वह हमेशा विद्यार्थी में नई ऊर्जा व स्फूर्ति के विकास में प्रयासशील हो। शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास है अतएव शिक्षक के उक्त ये गुण ही उसमें सहयोगी होंगे। एक शिक्षण संस्थान का विकास भी एक-एक शिक्षक के योगदान पर निर्भर होता है अतएव अपने व्यवहार को सार्थकता प्रदान करें।

20. शिक्षक को सदैव उदारता रखते हुए सिर्फ अपने को ही आत्मज्ञानी न मानते हुए अपने विद्यार्थियों एवं सहकर्मियों से भी ज्ञान लेने में संकोच नहीं करना चाहिये। इस मित्रवत् व्यवहार से भी आप अपने सम्मान-वृद्धि के साथ वातावरण को खुलेपन के साथ स्वस्थ

बना सकते हैं।

21. समय की पाबन्दी विद्यार्थी से पहले शिक्षक एवं शिक्षक से पहले प्रशासन के लिए अवश्यंभावी है।

22. शिक्षक सदैव नये व मौलिक कार्य की ओर तत्पर होकर विद्यार्थी को नीरसता से दूर सृजनात्मकता की ओर प्रेरित कर सकते हैं। शिक्षक अपने किसी भी ज्ञान के प्रति पूर्वाग्रह से ही ग्रसित न हों, वरन वे तथ्यात्मक वास्तविकता के आधार पर उसका विश्लेषण एवं समीक्षा कर उसे स्वीकार करें। अपने कार्य में सदैव गतिशीलता एवं रचनात्मकता को ही स्थान दें। व्यक्तित्व को सदा प्रभावशाली एवं कठोरता से दूर रखे क्योंकि शिक्षक सदा प्रेरणास्रोत होता है इसलिए उसकी कठोरता गतिशीलता की बाधक बन सकती है।

23. कैसी भी परिस्थिति में व्यवहार को सहजता, सामान्यता एवं संतुलन प्रदान कर स्थिति को बोझिलता प्रदान न करें।

24. शिक्षक का संबंध सिर्फ विद्यार्थी से ही नहीं वरन् उसके घर-परिवार, स्वजन एवं परिजन सभी से सद्भावपूर्ण होना चाहिए।

25. अनुभव बहुत बड़ी पूंजी है, अतएव स्वयं के अनुभव एवं अपने से ज़्यादा अनुभवी एवं ज्ञानी के अनुभव का ज़रूर लाभ उठायें। वह आपके कार्य को और बेहतर बनायेगा एवं आपके कार्य में आने वाली गलतियों व विपरीत तत्वों से भी आपको बचायेगा।

ये निम्नांकित तीन बिन्दु मेरे लिए आदर्श बिन्दु हैं, जो मुझे सदा नकारात्मक एवं अस्वस्थ हो रही विचारधारा में कैप्सूल का काम करते हैं - (1) छात्र कैसा भी हो उसे अपनी औलाद मानते हुए उसकी हर गलतीयों को नज़र अन्दाज़ करते हुए अपनाये और उसे सहयोग द्वारा सद्कार्यों की ओर प्रेरित करें, उसमें धर्म, जाति, देश, समुदाय एवं किसी भी राजनीति का स्थान न हो।

(2) जीवन में सुख के साथ दुःख एवं परेशानियां आती रहती हैं अतएव अपने शिक्षण-कार्य को विराम न देते हुए यथा सम्भव सुचारु ही रखें क्योंकि वह ही आपके लिए जीवनी-शक्ति भी होगी।

(3) शिक्षक में अगर यह क्षमता नहीं है तो विकसित कर लेनी चाहिये कि कठिन से कठिन विषय को उचित, सरल एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से समझाकर उसमें आकर्षण एवं सम्मोहन पैदा करें। इसके लिए आवश्यक है कि वह स्वयं नियमित अभ्यास करें, स्वाध्याय करें, विचार-विमर्श करें, सत्संग करें, यथासमय विविध विद्वानों को सुनें, हर ज्ञान क्षेत्र को देखें, पढ़ें एवं गुनें, उसके मौलिक व नवाचारपूर्ण कार्यों से प्रेरित हो अपनी रचनात्मकता को भी बढ़ायें एवं स्वयं नियमित व्याख्यान देते हुए अपनी कमियों को दूर करते हुए अपनी अभिव्यक्ति को निरन्तर सुधारें एवं सम्प्रेषणीय बनावें। आपका पाठ्यक्रम कितना भी बोझिल व विस्तृत क्यों न हो आप उसके आधारभूत ज्ञान एवं अभ्यास के ढंग से विद्यार्थी में ऐसी आत्मनिर्भरता पैदा करें कि वह स्वयं प्रारंभिक मूलभूत ज्ञान द्वारा अग्रिम पाठ्यसामग्री को स्वविवेक से समझ कर उसका संधान कर सके एवं उसे विकसित कर सके।

सरोद-नवाज़ उ. अमजद अली खां के व्यक्तित्व-कृतित्व पर हाल ही में राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित आलेख 'सरोद के उस्ताद का साम्राज्य' में प्रस्तुत उस्ताद के उद्गार मौजूदा शिक्षण-पद्धति के लिए एक आदर्श स्थिति हो सकती है -

''मैं जाति, रंग और पंथ के आधार पर लोगों को डराने व बांटने वाली विचारधारा में विश्वास नहीं करता हूँ। दुनिया में मेरा संबंध संगीत की भाषा के माध्यम से है, मेरी यात्रा के दौरान मैंने महात्मा गांधी की शिक्षाओं की गूंज दुनिया के कई हिस्सों में देखी है। उनके द्वारा दिया गया अहिंसा का संदेश वर्तमान संदर्भ में मूल्यवान और प्रासंगिक है।

हमारे यहां स्कूल में करुणा व दयालुता नहीं सिखाते। किस तरह की शिक्षा-व्यवस्था का हम पालन कर रहे हैं जो इन मूल्यों को किसी भी जीवन के लिए बुनियादी बातें सिखाने में नाकाम हैं। आधुनिक शिक्षा में जातिवाद का क्या महत्व है? एक स्कॉलर और एजुकेशनिस्ट सांप्रदायिक या कट्टरपंथी कैसे हो सकता है? हमारी शिक्षा अच्छे अंक और डिग्री स्कोर की दिशा में तैयार है। यह एकता, करुणा और समानता नहीं सिखा रही है। इसलिए मेरी अपील है कि सभी अपने स्वार्थी हितों को त्याग कर शांति का संदेश फैलायें। अवसरवादी ना बनें, हिन्दू धर्म में कही बात 'आत्मा ही परमात्मा है', सेवा जीवन का एक मात्र आदर्श होना चाहिये।

देश की प्रथम शास्त्रकार महिला प्रोफेसर प्रेमलता शर्मा का कथन है कि ''श्रेष्ठ गुरु अपने शिष्यों को सभी प्रकार के बन्धनों से विमुक्त रखते हैं। शिष्य के विवेक दीप को प्रज्ज्वलित करते हैं। शिष्यों की संख्या से अधिक उनके सत्वशील व्यक्तित्व-निर्माण को ही प्रधानता देते हैं (पुस्तक-विविध विषय-विदुषी प्रोफेसर प्रेमलता शर्मा; व्यक्तित्व एवं कृतित्व, लेखिका - डॉ. अर्चना दीक्षित के कवर पृष्ठ से उद्धृत)

- 118-ए, 'रसमंजरी', गेटोर रोड, ब्रह्मपुरी, जयपुर (राजस्थान) फोन: 0141-2671259

आलेख

शास्त्रीय वादन
तकनीकी पक्ष एवं आधुनिक युग में नई संभावनाएं

शास्त्रीय गायन, वादन व नृत्य हमारे देश की संस्कृति व महान परंपरा के महत्वपूर्ण अंग हैं। सारे विश्व में देश के अनेक गुणी कलाकार अपनी कला से श्रोताओं को प्रभावित कर रहे हैं। शास्त्रीय संगीत हमारे देश की कला संस्कृति का परिचायक है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक इसका प्रचलन जारी है। हालांकि पाश्चात्य संस्कृति का भी इस पर प्रभाव पड़ा है फिर भी हमारा शास्त्रीय गायन, वादन, नृत्य, आज भी परंपरा के रूप में मौजूद है एवं अनेक युवा कलाकार आज इस परंपरा का निर्वाह कर रहे हैं, समय के साथ कुछ नए परिवर्तन भी हुए हैं।

शास्त्रीय वादन :- शास्त्रीय वादन गायन व नृत्य का एक अविभाज्य अंग है इसके साथ ही साथ यह अपनी खुद की अलग पहचान भी रखता है। एकल वादन के साथ ही साथ वाद्यवृंद (उदा. मैहरबैंड) की भी अपना विशेष स्थान है, आज के युग में फ्यूजन का भी अपना विशेष स्थान है। जिसमें भी वादक शास्त्रीयता की में परम्परा बरकरार रख रहे हैं।

शास्त्रीय वादन को हम दो प्रकार के वाद्यों में बांट सकते हैं -

1. स्वर वाद्य
2. ताल वाद्य

स्वर वाद्यों के माध्यम से शास्त्रीय राग-रागिनियां, ख्याल बंदिशें आदि वाद्यों द्वारा बजाई जा सकती हैं। ताल वाद्यों जैसे तबला, पखावज, मृदुंग, ढोलक इत्यादि से विभिन्न शास्त्रीय तालों को बजाया जाता है। हर एकल या वाद्यवृंद के वादन के साथ ताल वाद्य अनिवार्य रूप से बजाया जाता है। रचनाओं को ताल की मात्राओं के साथ गूंथा गया है। अत: स्वर वाद्य व ताल वाद्य दोनों का चोली दामन का साथ है।

ईश्वरीय संगीत:- हमारे संगीत की परंपरा बहुत प्राचीन है। देवी माँ सरस्वती की वीणा के तारों से संगीत के स्वर जन्मे हैं। वाद्य संगीत की परंपरा का जन्म प्रकृति व ईश्वर प्रदत्त है। वीणा पर माँ सरस्वती वादन करते हुए दिखाई देती हैं। इसी प्रकार 2000वर्ष पूर्व पं. भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में भारतीय शास्त्रीय संगीत की मुलभूत 22श्रुतियों के बारे में बताया है। हमारा संगीत प्रकृति से जन्मा है जबकि पाश्चात्य संगीत के स्वर मानव द्वारा निर्मित हैं। अत: हमारा शास्त्रीय गायन वादन आत्मा में संवेदना पैदा करता है व आध्यात्मिक भी है।

शास्त्रीय वाद्य व वादक:- हमारे देश के अनेक गुणी प्रतिभावान वादकों ने शास्त्रीय वाद्यों का वादन कर देश व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित होकर ख्याति अर्जित की है। अगर हम तंतु वाद्यों की बात करें तो सितार (पं. रविशंकर), सरोद (उस्ताद अमजद अली खां, उस्ताद अली अकबर खां), संतूर (पं. शिवकुमार शर्मा), सारंगी (पं. रामनारायण, उस्ताद सुलतान खां), मोहनवीणा (पं. विश्वमोहन भट्ट), वायोलिन (श्रीमती एम. राजम) आदि नाम सभी सुधी श्रोताओं की जबान पर हैं। इसी प्रकार सुशीर वाद्यों में बांसुरी (पं. पन्नालाल घोष, पं. हरि प्रसाद चौरसिया), शहनाई (उस्ताद बिसमिल्ला खां), सुंदरी (पं. सिद्धराम जाधव), क्लेरोनेट (उस्ताद नौशाद

अली), हार्मोनियम (पं. अप्पा जलगावकर, पं. तुलसीदास बोरकर) आदि प्रचलित नाम है। अगर ताल वाद्य की बात करे तो तबला (उस्ताद जाकिर हुसैन) पखावज (पं. पागलदास, श्री अखिलेश गुंदेचा) शास्त्रीय वादन में निपुण महारथी हैं।

आधुनिक काल के युवा साधक:- शास्त्रीय वादन की परंपरा में अनेक युवा साधक भी सामने आए हैं जो अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा रहे हैं। अनेक बड़े कलाकारों के पुत्र व शिष्य इस परंपरा का निर्वाह कर अपना स्थान बना रहे हैं। जैसे सितार (पूर्वायन चटर्जी), सरोद (अमान-अयान बंगश), संतूर (पं. राहुल शर्मा) मोहनवीणा (पं. सलिल भट्ट), सारंगी (सरवर हुसैन, फारूख लतीफ खां), वायोलिन (मयुरेश-गणेश), बांसुरी (रूपक कुलकर्णी, अभय फगरे), हार्मोनियम (पं. अरविन्द थत्ते), ताल वाद्यों में तबला (हितेन्द्र दीक्षित) अच्छा नाम कमा रहे हैं।

शास्त्रीय वाद्य यंत्रों के वर्तमान में बदलते स्वरूप व अनुसंधान

वर्तमान समय में वाद्ययंत्रों के शास्त्रीय वादन की परंपरा को बरकरार रखते हुए कई वाद्यों में परिवर्तन एवं अनुसंधान हुए है इसी प्रकार पाश्चात्य वाद्यों से नए वाद्य भी भारतीय परिवेश के शास्त्रीय वादन हेतु उपयुक्त होकर साधक उनकी साधना कर रहे हैं।

1. पं. विश्वमोहन भट्ट ने हवाई गिटार अनुसंधान कर मोहनवीणा बनाई जिसमें उन्हें ग्रेमी अवार्ड प्राप्त हुआ।
2. पं. सलिल भट्ट ने हवाई गिटार को सात्विक वीणा के रूप में दो तुंबे लगाकर प्रस्तुत किया।
3. लेखक डॉ. विवेक बनसोड ने मेलोडिका (पाईप हार्मोनियम) को मंगलवाद्य के रूप मे परिवर्तित किया वे उस पर शास्त्रीय वादन करते है।
4. इंदौर के सचिन पटवर्धन ने स्पेनिश गिटार को स्पेनिश वीणा के रूप में शास्त्रीय वादन कर तानसेन समारोह 2017 में बजाया।
5. डॉ. विद्याधर ओक ने 22 श्रुतियों पर आधारित 22 श्रुति हार्मोनियम को पेटेंट किया (भारतीय पेटेंट नं. 250197) इसी प्रकार 22 श्रुति वीणा का भी निर्माण किया।

शास्त्रीय वादन का गणितीय व तकनीकी पक्ष

शास्त्रीय वादन को गणित से अलग नहीं किया जा सकता। बहुत कम लोगों को संगीत का गणित पता है। पाश्चात्य के टेपर्ड 12 स्वरों की ट्यूनिंग उसी प्रकार भारतीय 22 श्रुतियों की ट्यूनिंग गणित पर आधारित है जो निम्नानुसार है।

संगीत की 22 श्रुतियां हमारे हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की नींव हैं । प्रसिद्ध संगीत मनीषि भरतमुनि ने इन बाईस श्रुतियों की व्याख्या की है। उन्होंने लिखा है चतुश: चतुश: चतुशैव षडज् मध्यम पंचम द्वै द्वै निषाद गंधार, त्रिश्री रिषभ र्धैवतशच: वेदों में भी इनका वर्णन है।

कई संगीत जो विद्वानों ने इन श्रुतियों की व्याख्या, गणना व आकलन किया है परन्तु आज भी संगीत जगत से जुड़े कलाकार जाने या अनजाने में इनसे अनभिज्ञ है। एक अच्छा संगीतकार कंठ के द्वारा या वाद्य के द्वारा इन श्रुतियों का राग की प्रस्तुति में शुद्धता का परिचय देते हुए इसे प्रस्तुत करते हैं, परन्तु इन श्रुतियों का गणितीय ज्ञान एवं शास्त्र का ज्ञान भी होना संगीतकारों हेतु अति आवश्यक हैं ।

हमारे सभी थाट व राग इन श्रुतियों पर ही आधारित हैं। इन 22 श्रुतियों से ही विभिन्न रागों के स्वरों का चयन किया जाता है। मुंबई के डॉ. विद्याधर ओक ने इन श्रुतियों की व्याख्या, इनका आपस में गणितीय अनुपात, उनके स्वर संयोग आदि पर विस्तारपूर्वक अध्ययन कर इनके निश्चित स्थान व फ्रिक्वेंसी व 22 श्रुति हार्मोनियम का निर्माण भी किया है।

देश व विदेश के सभी हार्मोनियम, की-बोर्ड, पियानो, आर्गन आदि वाद्य विदेशों में प्रचलित इक्वी टेंपई स्केल (ई.टी.) के आधार पर बनाए गए हैं। आजकल कई अच्छे हार्मोनियम वादक किसी विशेष स्वर से प्राकृतिक स्केल में ट्यूनिंग करते हैं फिर भी उन्हें अधिकतम 12 स्वर (7 शुद्ध, 4 कोमल व 1 तीव्र) ही एक सप्तक में मिल पाते हैं। जबकी श्रुतियां 22 हैं । अत: कई रागों में निश्चित

श्रुतियां इसमें बज नहीं पाती हैं। इसीलिए इसे एक वाद्य के रूप में अयोग्य माना गया है।

इसीलिए आकाशवाणी पर हार्मोनियम पर लगभग 30 वर्षों तक प्रतिबंध लगा दिया था, परन्तु सारंगी बजाने वाले कलाकारों की कमी होने से आजकल गायन में पुन: हार्मोनियम की संगति का प्रचलन होने लगा है परन्तु राग की सभी श्रुतियां ना मिलने के कारण गायक व वादक दोनों को श्रुतियों के साथ समझौता ही करना पडता है जिससे राग का शुद्ध स्वरूप श्रोताओं तक पहुंच नहीं पाता है।

22 श्रुति हार्मोनियम के उपयोग से यह त्रुटि दूर हो गई है एवं संगीत व राग की शुद्धता से गायक, वादक व श्रोता सभी संगीत की शुद्धता से रागों के सही स्वरूप को पहचान पाएंगे।

क्या है (Tempered Scale): माना कि षड्ज की फ्रिक्वेंसी (कपन संख्या) 100 है, Tempered Scale निम्नानुसार होगी –

स्वर	फ्रिक्वेंसी	कुल फ्रिक्वेंसी	षड्ज से % दुरी
कोमल रे	100 X 1.0595	105.95	5.95%
शुद्ध रे	105.95 X1.0595	112.25	12.25%
कोमल ग	112.25 X1.0595	118.92	18.92%
शुद्ध ग	118.92 X1.0595	125.992	26.00%
शुद्ध म	125.992 X1.0595	133.484	33.48%
तीव्र म	133.484 X1.0595	141.42	41.42%
पंचम	141.42 X1.0595	149.83	49.83%
कोमल ध	149.83 X1.0595	158.74	58.74%
शुद्ध ध	158.74 X1.0595	168.18	68.18%
कोमल नि	168.18 X1.0595	178.18	78.18%
शुद्ध नी	178.18 X1.0595	188.77	88.77%
तार षड्ज	188.77 X1.0595	200.00	100%

Tempered स्केल में अगले स्वर का पूर्व स्वर से एक निश्चित अनुपात 1.0595 माना गया है 12 √2=1.0595
लेकिन ये स्वर रागों की 22 श्रुतियों से मेल नहीं खाते.
प्राकृतिक सप्तक: प्राकृतिक सप्तक शुद्ध स्वरों का वह सप्तक है जो षड्ज से संवाद करके उत्पन्न होता है.

स्वर	फ्रिक्वेंसी	षड्ज से प्रतिशत दूरी
षड्ज	100	0%
रिषभ्	112.50	12.50%
गंधार	125	25%
मध्यम	133.33	33.33%
पंचम	150	50%
धेवत	166.66	66.66%
निषाद	187.50	87.50%
तार षडज्	200	100%

आप देख सकते हैं कि प्राकृतिक स्वरों की फ्रिक्वेंसी Tempered स्केल के शुद्ध स्वरों की फ्रिक्वेंसी से भिन्न है।

क्या हैं 22 श्रुतियां:– 22 श्रुतियां, श्रुति निर्माण चक्र से उत्पन्न हैं। षड्ज व पंचम अचल हैं व शेष सभी स्वरों की 2 श्रुति इस तरह से संख्या में 22 है। सभी में प्रयुक्त होने वाले स्वर गणित तथा प्रस्तुति इन तीनों के मध्यम से 22 श्रुतियों के स्थान व कंपन संख्या निम्न है। माना कि षड्ज = 100 (कंपन संख्या)

	कंपन	प्रतिशत दूरी	नोटेशन	श्रुति	परस्पर अनुपात	नाम
षड्ज	100	0	5	1	–	–
अतिकोमल रे	105.35	5.35	r_1	2	1.0535	1
कोमल रे	106.66	6.66	r_2	3	1.0125	3
शुद्ध रे	111.11	11.11	R_1	4	1.0416	2
तीव्र रे	112.50	12.50	R_2	5	1.0125	3
अतिकोमल ग	118.51	18.51	9_1	6	1.0535	1
कोमल ग	120.00	20.00	9_2	7	1.0125	3
शुद्ध ग	128.00	25.00	G_1	8	1.0416	2
तीव्र ग	126.56	26.56	G_2	9	1.0125	3
मध्यम	133.33	33.33	M_1	10	1.0535	1
एक श्रुति मध्यम	135.00	35.00	M_2	11	1.0125	3
तीव्र मध्यम	140.62	40.62	M_1	12	1.0416	2
तीव्रतम मध्यम	142.38	42.38	M_2	13	1.0125	3
पंचम	150.00	50.00	P	14	1.0535	1
अति कोमल धैक्त	158.02	58.02	d_1	15	1.0535	1
कोमल धैवत	160.00	60.00	d_2	16	1.0125	3
शुद्ध धैवत	166.66	66.66	D_1	17	1.0416	2
तीव्र धैवत	168.75	68.75	D_2	18	1.0125	3
अति कोमल निषाद	177.77	77.77	n_1	19	1.0535	1
कोमल निषाद	180.00	80.00	n_2	20	1.0125	3
शुद्ध निषाद	187.50	87.50	N_1	21	1.0416	2
तीव्र निषाद	189.84	89.84	N_2	22	1.0125	3
तार षड्ज	200.00	100.00	S_1	1	1.0535	1

1 – पूर्ण श्रुति, 2– प्रमाण श्रुति, 3– न्यून श्रुति

युवा पीढी शास्त्रीय वादन की तरफ अग्रसर हो और देश की महान परम्परा को बचाए

हमारी युवा पीढ़ी को चाहिए कि हमारे देश के शास्त्रीय वादन की महान परम्परा को बनाए रखे। नई तकनीक का उपयोग कर शास्त्रीयता को बरकरार रखे एवं नए अनुसंधान करते हुए देश की इस महत्वपूर्ण विद्या का संहरण करे एवं देश की महान परम्परा का निर्वाह करे एवं शास्त्रीय वादन के द्वारा सुरों का जादू विश्व में बिखेरे.

– डॉ. विवेक बनसोड, डायरेक्टर महाकाल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, उज्जैन
संपर्क:– 8989258452, 9827248107

– डॉ. अपर्णा पाण्डेय

षडज, रिषभ, गन्धार सप्त स्वर मुरली बाजे।
खटका, मुर्की, गमक कान्हजब तान सुनावें।
गोप-गोपियन संग, गौएं भी दौड़ लगावें।
शिखी, पिकी सब भूल तान पे ध्यान लगावें।
मात-पिता, पति छोड़, उफनता दूध भुलावें।
बेसुध होकर कान्ह-कान्हा की टेर लगा वें।
मन, वचनन सों जो हमरो हियरा हुलसावें।
धरते सुर मुनि ध्यान, निरंतर टेर लगावें।
सोई ब्रह्म अनूप बिरज में खेल दिखावें।
कह पाण्डेय कविराय हरि तुम तान सुनाओ।
भक्तन के चित्त मांहि, प्रेम की लगन लगाओ।।

कोटा, राजस्थान

आलेख

विरासत सँजोती कलापिनी रचेंगी शास्त्रीय संगीत के नये आयाम

- राजा दुबे

सुप्रसिद्ध शास्त्रीय गायक पद्मभूषण पं. कुमार गंधर्व की सुपुत्री और उनकी सुयोग्य शिष्या कलापिनी कोमकली पिछले दिनों महीने-डेढ़ महीने के अन्तराल से दो बार गायन के प्रयोजन से भोपाल पधारीं। एक बार पन्द्रहवें उस्ताद रेहमत अली खाँ स्मृति समारोह में शिरकत करने और दूसरी बार मध्यप्रदेश राज्य जनजातीय संग्रहालय की वर्षगांठ पर आयोजित गीत-संगीत समागम -''निर्गुण गान'' में निर्गुण भजनों के गायन के लिये ।

अपनी सांगीतिक प्रस्तुतियों के लिये भोपाल आने पर मीडिया ने उनसे यह गंभीर सवाल किया कि उनके पिता और गुरु पं. कुमार गंधर्व ने कबीर के निर्गुणी भजनों के गायन की जो एक नई और विलक्षण शैली ईजाद की थी, क्या वे भी ऐसी किसी नई शैली के अन्वेषण अथवा इस दिशा में किसी अभूतपूर्व अवदान के बारे में सोचती हैं? इस सवाल के जवाब में उन्होंने अत्यंत विनम्रता से यह कहा था कि मेरे बाबा कुमार साब ने निर्गुण भजनों के गायन में जो प्रयोग किये वो अनवरत साधना, निर्गुण दर्शन को आत्मसात करने और कुछ अद्वितीय और अद्भुत करने की दृढ़ इच्छा शक्ति का परिणाम था। मेरी कोशिश तो मेरे बाबा की निर्गुण भजन गायन की विलक्षण शैली को संजोकर उसे अक्षुण्ण बनाये रखना है। मेरे लिये उस दिशा में कोई भी प्रयोग असाध्य न सही दु:साध्य तो है ।

कलापिनीजी की इस साफगोई और विनम्रता से यह तो स्पष्ट है कि वे कुमार साब की इस विलक्षण विरासत को संजोकर रखेंगी। समकालीन गायकों और कला समीक्षकों का तो यह भी मानना है कि वे आगे जाकर निर्गुण भजन गायन की इस शैली में कुछ नया जरुर करेंगी। मीडिया से बातचीत में उन्होंने एक और महत्वपूर्ण बात यह भी कहा कि कुमार साब संगीत की दीक्षा में अपने शिष्यों के बीच कोई भेदभाव नहीं करते थे, यहाँ तक कि हम भाई-बहन में भी कोई भेद नहीं रखते थे। कलापिनीजी ने सच ही कहा एक महान गायक इतना ही समदर्शी होता है।

मराठी और हिन्दी में समान अधिकार के साथ लेखन करने वाले प्रख्यात रचनाकार और कुमार साब के गायन के प्रशंसक व अध्येता पु.ल.देशपाण्डे ने लिखा धा कि कुमार साब द्वारा कबीर के निर्गुण भजनों के गायन की अलहदा और विलक्षण शैली का ईज़ाद कमोबेश उतना ही दुष्कर था जैसे कोई चित्रकार उपलब्ध रंगों के मेल से कोई नया और प्रभावी ''शेड'' ईजाद करे । मगर कुमार साब ने यह सम्भव कर दिखाया। उनकी सुपुत्री और सुयोग्य शिष्या कलापिनी कोमकली भी इस शैली में अच्छी प्रस्तुति कर रही हैं.

शास्त्रीय संगीत में -''यूथ ऑईकान'' की पहचान बनाने वाली कलापिनी अपने बाबा सुप्रसिद्ध शास्त्रीय गायक पं. कुमार गंधर्व और अपनी आई सुप्रसिद्ध शास्त्रीय गायिका श्रीमती वसुंधरा कोमकली को अपना आदर्श मानती हैं, मगर इनके अलावा वे अन्य प्रख्यात शास्त्रीय गायकों यथा मल्लिकार्जुन मंसूर, पंडित जसराज और माणिक वर्मा सहित कई गायकों की भी प्रशंसक हैं। वे बीते समय की उन महान शास्त्रीय गायिकाओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करती हैं जिन्होंने आज की शास्त्रीय गायिकाओं के लिये शास्त्रीय गायन का मार्ग प्रशस्त किया। अपने गायन पर अपने बाबा पं. कुमार गंधर्व और आई वसुंधरा कोमकली की गायन शैली का गहरा प्रभाव होने के बाद भी कलापिनी उस विरासत को संजोने के साथ ही अपनी अलहदा पहचान बनाने की जद्दोजहद में भी लगी हैं । इन दोनों ही आयोजनों में भाग लेने के बाद कलापिनीजी ने भोपाल के संगीत प्रेमी श्रोतावृन्द के बारे में कहा कि वे शास्त्रीय संगीत की जरूरी समझ रखते हैं, उसका आनन्द लेना जानते हैं और यह शहर मेरे गायन को बखूबी समझता है। जब किसी गायक को भोपाल जैसे सुधी और शास्त्रीय संगीत का आनन्द लेने वाले श्रोता मिले तो उसकी और क्या अपेक्षा होगी ?

एफ - 310 , राजहर्ष कालोनी, (अकबरपुर) कोलार रोड ,
भोपाल (म.प्र.) 462042, मो. 94253 77584

आलेख

गुरु-शिष्य परम्परा

गुरुर्ब्रह्मा: गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

– डॉ. सीमा गोयल

गुरु-शिष्य परम्परा भारतीय संस्कृति की सबसे अधिक प्राचीन परम्परा है। गुरु-शिष्य का संयोग केवल दो व्यक्तियों का मेल भर नहीं होता बल्कि यह संयोग, वात्सल्य और विनय का, प्रेरणा और प्रयोग का, अनुशासन और समर्पण का, उपकार और आभार का, स्नेह और सौहार्द्र का तथा आस्था और विश्वास का अद्‌भुत संयोग होता है।

ऐसे बहुत कम कला गुरु होते हैं जो खुद बेहतरीन काम करने के साथ-साथ शिष्य-शिष्याओं को कम समय में तैयार कर सकते हैं। इन्हीं गुणों को अपने में समायोजित किये हुये जयपुर घराने की मूर्धन्य एवं ख्याति प्राप्त कथक नृत्य गुरु डॉ. शशि साँखला जी का परिचय मैं दे रही हूँ।

आपका जन्म राजस्थान के जोधपुर जिले में 28 अक्टूबर 1948 को हुआ। आपने कथक नृत्य की प्रारम्भिक शिक्षा गुरु मूलचन्द गोमेती जी से प्राप्त की तत्पश्चात् जयपुर घराने के सुप्रसिद्ध नृत्याचार्य पं. मोहन लाल जी तथा पं. कुन्दनलाल गंगानी जी से कथक नृत्य की उच्च शिक्षा प्राप्त की। आपने गुरु सुश्री प्रतिभा पण्डित जी से भरतनाट्‌यम् की शिक्षा तथा पं. बी.एन. क्षीरसागर जी से गायन की विधिवत शिक्षा भी प्राप्त की। आपको गायन एवं नृत्य दोनों ही विषयों में 'संगीत अलंकार' की उपाधि से विभूषित होने का गौरव प्राप्त है। इसके अलावा आपने पं. बद्रीनारायण जी पारिख से पखावज वादन में विधिवत शिक्षा प्राप्त की एवं मास्टर कासिम जी से लोक नृत्य की बारीकियाँ सीखीं।

9 वर्ष की अल्प आयु में ही आपने अपनी प्रतिभा का परिचय देकर दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय रेलवे प्रतिस्पर्धा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। तत्पश्चात् आपने अनेक युवा उत्सवों एवं कथक प्रतिस्पर्धाओं में भाग लिया एवं प्रशंसित हुईं। आपने संगीत नाटक अकादमी, राजस्थान पर्यटन विकास निगम, क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्रों, महाराज कालका बि. समारोह, शरदचन्द्रिका उत्सव, कालिदास समारोह आदि में अपने नृत्य के प्रदर्शन से दर्शकों पर अमिट छाप छोड़ी है। आपने राजस्थान में व्यापक स्तर पर एवं मुम्बई, दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई, भोपाल, लखनऊ, बेंगलुरू, पटना तथा ओड़िशा में भी नृत्य प्रदर्शन कर कथक के प्रचार-प्रसार में अपना अपूर्व योगदान दिया। कथक नृत्य के साथ आपने लोक नृत्यों में भी नये आयाम विकसित किये हैं और उन्हें शास्त्रीयता की धुरी पर केन्द्रित एवं प्रतिष्ठित किया है। इसके फलस्वरूप उन्हें 1963 में प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने भी प्रोत्साहित किया।

सर्वप्रथम वे सन 1967 में जोधपुर में बतौर नृत्य शिक्षिका 'राष्ट्रीय कला मण्डल' में नियुक्त हुईं और फिर उसके पश्चात् सन् 1978 में आप जयपुर कथक केन्द्र में कथक गुरु के रूप में नियुक्त हुईं और 28 वर्षों तक वहाँ कार्य करने के पश्चात् सन् 2006 में प्रिंसिपल के पद से रिटायर हुईं। इन 28 वर्षों में उन्होंने केन्द्र में अनेक छात्र-छात्राओं को प्रशिक्षण दिया जिनमें उनकी तीनों पुत्रियाँ भी शामिल हैं।

चूँकि आप में नित नये प्रयोग करने की जिज्ञासा रहती है, अत: आपने कथक को लेकर कई प्रयोग किये हैं, जिसमें कुछ

डॉ. शशि सांखला

गायकी के विभिन्न प्रकार जैसे ध्रुपद, ख्याल, तराना, व अष्टपदी पर आधारित हैं। इसके अलावा भी कुछ अन्य नवीन प्रयोग लोक गायकी जैसे कि पणिहारी, केसरिया बालम, गणगौर, घूमर इत्यादि पर आधारित हैं। इसके साथ ही अन्य नवीन प्रयोगों में उन्होंने नृत्य नाटिकाओं पर भी कार्य किया है, जिसमें से प्रमुख हैं- राधेरानी, राजपूतानी, चौसर, दशावतार।

उनके नवीन प्रयोग में से उन्हें 'माँड' जैसी लुप्त गायिकी पर कथक नृत्य के अभिनय पक्ष पर सीनियर शोध कार्य करने के लिये मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा फैलोशिप भी प्रदान की गई। इस माँड द्वारा उन्होंने जयपुर घराने की कथक परम्परा में माँड को ठुमरी जो कि लखनऊ घराने में अभिनय के लिये प्रसिद्ध है के समकक्ष माना है व अपनी बात को शोध के द्वारा दर्शाया है। इसके साथ ही जयपुर दूरदर्शन से आपके कथक प्रशिक्षण के 6 एपिसोड प्रसारित हो चुके है।

आप कथक के विकास, संवर्द्धन और प्रसार के लिये कृत संकल्पित हैं और आपके इसी योगदान के लिये सन् 2008 में आपको संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली में राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल द्वारा सम्मानित किया गया। इसके साथ ही आपको संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर में मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत जी द्वारा सन् 2001 में भी सम्मानित किया गया। उनके सम्मान की सूची बहुत अधिक है इसलिये कुछ प्रमुख सम्मानों के नामों में राजस्थान श्री, संगीत राज, गुणीजन अवार्ड, संगीत कला रत्न, इत्यादि प्रमुख हैं।

नृत्य प्रशिक्षण का आपको 50 वर्षों से अधिक का अनुभव है तथा आपने कथक तथा लोक नृत्यों में अनेक छात्र-छात्राओं को तैयार किया है। उनके शिष्य-शिष्याओं का यह मानना है कि वे बड़ी सरलता से नृत्य सिखाती हैं एवं अनुशासन प्रिय भी हैं, साथ ही सुन्दर अंग संचालन पर विशेष ध्यान देती हैं। उनका अपने शिष्यों के लिए गुरुमंत्र यही है कि 'रियाज करो'। वे अपने शिष्य-शिष्याओं को अपनी कला की अभिव्यक्ति करने का अवसर देती हैं व उनकी उपलब्धियों की सराहना भी करती हैं। आप स्वभाव से इतनी मृदु हैं कि चाहे वह शिष्य या शिष्या हो या कोई अन्य कलाकार सब उनका सम्मान करते है व उनसे चाहे किसी भी दुनिया के कोने में वे चले जायें, जुड़े रहते हैं। सही शब्दों में यदि कहा जाये तो वे अपितु एक गुरु की तरह ही नहीं, बल्कि एक माँ की भांति अपने शिष्य-शिष्याओं को कला का ज्ञान देती हैं और अपनी कला की तरफ वे पूर्ण रूप से समर्पित हैं। उनकी नजरों में पुत्री या शिष्या में कोई भेद नहीं है। उनके द्वारा प्रशिक्षण लेने वाले छात्रों में ना केवल देश के बल्कि विदेश के शिष्य भी हैं और भाषा कभी भी कला के बीच में बाधक नहीं बनी। उनके जैसा गुरु मिलना बड़े ही सौभाग्य की बात है।

वर्तमान में आप गायन, वादन एवं नृत्य को समर्पित जयपुर स्थित संस्थान गीतांजलि म्युजिक सोसाईटी की संस्थापिका हैं व आपके असीम योगदान से गीतांजलि संस्था ने एक विशाल वृक्ष का रूप ले लिया है, जहाँ गुरु की सेवा करते हुये उनके शिष्य कला-ज्ञान ग्रहण कर आज उसी ज्ञान को बाँटने में अपना योगदान दे रहे हैं। ■

रेखा चित्रकार, संगीतकार- नागनाथ मनकेश्वर

नागनाथ मनकेश्वर के संगीत के साथ उनके चारकोल चित्र भी बोलते है..

रेखाचित्र- नागनाथ मनकेश्वर

रेखाचित्र- नागनाथ मनकेश्वर

पं. रविशंकर से ललित शर्मा की मुलाकात

संगीत भगवत् सिद्धि का माध्यम है- पं. रविशंकर

भारतीय शास्त्रीय संगीत का इतिहास अमीर खुसरो, जयदेव, अली अकबर, इमदाद खाँ व गोपाल नायक पृभृति का जितना ऋणी है उससे कहीं अधिक ऋणी है उससे कहीं अधिक ऋणी है विश्व विश्रुत सितारवादक पं. रविशंकर का, क्योंकि सम्पूर्ण विश्व में भारतीय शास्त्रीय संगीत के न केवल प्रचार प्रत्युत उसकी धरातलीय स्थापना के लिये अपनी उम्र की हर सांस समर्पित करने में पं. शंकर के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

पं. रविशंकर के जीवन और परिवार के बारे में यद्यपि अनेक जानकारियाँ उपलब्ध हैं परन्तु यह बहुत कम कलाविद् जानते होंगे कि उनका मूल धरातलीय सम्बन्ध किन-किन स्थानों से रहा होगा? प्रस्तुत परिचयात्मक मुलाकात एवं लेख में यही सब

पं. श्यामाशंकर (बार-एट-ला) पं. रविशंकर के पिता

- ललित शर्मा

रेखांकित करने का प्रयास भर किया गया है। यह ध्रुव सत्य है कि पं. रविशंकर का व उनके परिवार का गहरा आरम्भिक सम्बन्ध राजस्थान की दो रियासत मेवाड़ (उदयपुर) तथा झालावाड़ (राजस्थान) से रहा है। पं. रविशंकर के पिता पं. श्यामाशंकर (बार-एट-ला), (जिन्होंने 'बुद्ध एण्ड हिज प्रिचिसिंग' पर आक्सफोर्ड यूर्निवसिटी से पीएच.डी. प्राप्त की थी) झालावाड़ राज्य में महाराजा राणा भवानी सिंह झाला के दरबार में एक प्रतिष्ठित दीवान थे। वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता और लेखक थे। इससे पूर्व वे उदयपुर महाराणा की सेवा में थे, परन्तु बाद में वे झालावाड़ में महाराजा राणा भवानी सिंह के प्रधान सचिव के रूप में आये। विभिन्न पदों पर रहते हुए, अपनी काबिलियत के बल पर वे 'रियासते-दीवान' बने। उन्हें भवानीपुरा (झालावाड़ राज्य की जागीर) ग्राम का जागीरदार बनाया गया। उनकी पत्नि का नाम हेमांगना देवी था। जब श्यामाशंकर अपनी पत्नि के साथ एवं अपने पुत्रों (उदयशंकर) के साथ झालावाड़ राज्य में आये तब रविशंकर का जन्म नहीं हुआ था। परन्तु इस राज्य में जितनी कालावधि तक वे रहे, उसी अवधि के मध्य इसी झाला राज्य में हेमांगना देवी के गर्भ में पं. रविशंकर आये थे और फिर अपने गर्भ में इस गर्वीले पुत्र (शिशु) को लिये जब हेमांगना देवी और श्यामाशंकर वाराणसी पहुँचे वहीं 7 अप्रैल 1920 ई. को पं. रविशंकर का जन्म हुआ। इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि पं. रविशंकर का मूल जीव बीज झालावाड़ राज्य में पड़ा और फिर बरसों बाद उनकी यही उत्कंठा उन्हें महान बनने के बाद सन् 1991 ई. के फरवरी माह में 'झालावाड़ कला महोत्सव' में अपनी इसी झालावाड़ की धरती पर सितार-संगीत के वट वृक्ष के रूप में यहां खीच ले आई थी।

इस प्रकार श्यामाशंकर को देवी हेमांगना से 5 पुत्रों की प्राप्ति हुई। इनमें क्रमशः पं. उदयशंकर (विश्वविश्रुत नृत्यकार),पं. राजेन्द्र शंकर, पं. देवेन्द्र शंकर और स्वयं पं. रविशंकर तथा पं. भूपेन्द्र शंकर(इनका निधन बचपन में ही हो गया था।)

पं. उदयशंकर, रविशंकर से आयु में 20 वर्ष बड़े थे। इस प्रकार उक्त प्रामाणिक विवरण से स्पष्ट होता है कि झालावाड़वासी

भी पं. रविशंकर के अर्पित विश्वयश के भागीदार रहे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्ष 1991 ई. के फरवरी माह के प्रथम सप्ताह में जब पंडित जी झालावाड़ पधारे तब वे यहां तीन दिवस रुके तथा झालावाड़ उत्सव के तहत उन्होंने यहां की सुप्रसिद्ध श्री भवानी नाट्यशाला में सितारवादन किया। इस वादन से पूर्व हजारों कला प्रेमियों की उपस्थिति में उन्होंने सविनय और सगर्व इस बात को स्वीकार किया था कि–''वे जब अपनी माँ के गर्भ में आये तब वे झालावाड़ में ही थे, अत: उनकी जन्मभूमि झालावाड़ भी है।'' देखा जाये तो इतने महानतम् व्यक्तित्व द्वारा ऐसी बात को स्वीकारना कम नहीं है कि उसी मिट्टी का सम्मान करते हुए हृदय की उत्कण्ठा, भावना के कारण ही वे झालावाड़ आये और उन तीनों दिनों वे झालावाड़ नगर की गलियों में घूमे तथा इन हिन्दू–मुसलमान बुजुर्गों से उनके घरों पर जाकर स्वयं मिले जो राज्यकाल में उनके पिता के परममित्र रहे। यहां यह भी उल्लेखनीय होगा कि इन तीन दिनों की यात्रा में वे एक दिन प्रात: गागरोन दुर्ग भी गये ! वहां स्थानीय प्रशासन ने उनके समक्ष स्थानीय लोक कलाकारों व गायकों की सुन्दर प्रस्तुति भी रखी थी। उस समय इस लेख/साक्षात्कार के अकिंचन लेखक को तत्कालीन जिला कलेक्टर शिवजी राम प्रतिहार ने पं. रविशंकर को दुर्ग की वांछित सांस्कृतिक देने हेतु नियुक्त किया था। इसी क्रम में अगले दिन जब पंडित जी झालावाड़ नगर के मंगलपुरा की मस्जिद गली में उनके पिता के एक मित्र बुजुर्ग से मिलने आये उसी समय इस लेखक ने पंडित जी से निकट स्थित अपने आवास पर चन्द समय हेतु पधारने का विनम्र आग्रह किया। पं. जी गागरोन की जानकारी पाकर प्रभावित तो थे ही वे शीघ्र ही पैदल घर पधारे। उस समय लेखक ने उनके बड़े भ्राता पं. उदयशंकर व पिता पं. श्यामाशंकर के दुर्लभ चित्र ससम्मान भेंट किये। पंडित जी उन्हें देख भाव विभोर हुए और उसी समय लेखक ने अपने तैयार किये कुछ प्रश्नों के माध्यम से उनसे लगभग 12 मिनिट की भेंटवार्ता की थी।

यहां पंडित जी से प्राप्त भेंटवार्ता प्रस्तुत करने से पूर्व यह जानना भी कला प्रेमियों और पारखियों को आवश्यक होना चाहिये कि पं. रविशंकर आरम्भ में अपने अग्रज पं. उदयशंकर की नृत्य मण्डली में रहे। सितार वादन साधना में वे बाद में आये। इस क्षेत्र में वे फिर इतने ज्यादा निष्णात हुए कि सितार और भारतीय संगीत से पश्चिमी देशों का परिचय कराने का सर्वप्रथम श्रेय उन्हीं को जाता है।

पं रविशंकर का नाम सितार की झंकार की तरह जब कानों में गूंजता है तब यह सोचने को विवश होना पड़ता है कि अपने इस नाम में उन्हें झंकार पैदा करने की मंजिल तक जाने के लिये कितनी ही सीढ़ियाँ और कितने ही दरिया पार करने पड़े होगे। जीवन की बीहड़ साधना या यूँ कहें कि उफनते दरिये में से स्वयं की साधना और इच्छा शक्ति के सहारे निकलना था रविशंकर को, वह भी अकेले। बस उनकी इस दरिया में उनके पतवार थे मैहर की शारदा माँ के परमोपासक और गुरु उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब, जिन्होंने इन्हें सितार संगीत की उफनती गंगा से आकाश की दमकती गंगा तक पहुंचाया और फिर यह भी सत्य है कि उस्ताद ने सितार को साक्षात सरस्वती देवी और संगीत को अपना मज़हब माना। उन्होंने अपने मज़हब की दीक्षा से सिर्फ अपने छोटे पुत्र को (अकबर खाँ) को ही नहीं नवाजा अपितु अपने मज़हब का एक हिस्सा बगैर पक्षपात के अपने 'रवि' को भी दिया।

श्री भवानी नाट्य शाला में सितारवादन करते पं. रविशंकर

अपने अथाह प्रेम की सर्वोच्च सीमा और अटूट विश्वास का उस्ताद ने एक अनूठा उदाहरण पेश किया कि अपनी शिष्यापुत्री अन्नपूर्णा देवी और रविशंकर को उन्होंने वैवाहिक सूत्र में बांध दिया था। पं. रविशंकर जिनका मूल बीज झालावाड़ में पड़ा और फिर बाद में वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सितारे सितार बने और फिर बरसों–बरस बाद झालावाड़

की भवानी नाट्यशाला में सितार वादन करने आये तब इस बात पर शायर ने भी बफौल क्या खूब कहा–

वादियाँ जिनके पैरों से भी मीलों नीचे !
जिनके नजारों में है क्या चोटियां चट्टानों की !!

पंडित जी ने भारतीय सितार का संगीत दुनिया भर में गुंजाया। उन्हें अनेकानेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान मिले। अनेक विशिष्ट स्तरीय फिल्मों और डाक्यूमेन्ट्री में उन्होंने संगीत प्रदान किया परन्तु वे अपनी मिट्टी को कभी नहीं भूलें जहाँ उनके माता–पिता रहे और वे उन सँकरी गलियों में घूमना भी नहीं भूले जहाँ उनके पिता के मित्र रहते थे। झालावाड़ का झाला राजपरिवार उनका अपना था। तब वे इस परिवार के साथ 3 दिन कोठी पृथ्वी विलास पैलेस में ही रूके। तत्कालीन महाराज राणा इन्द्रजीत सिंह झाला और महारानी स्वरूपा कंपर देवी तथा राजदादी इला देवी से उन्होंने पुरानी स्मृतियों को खूब बतियाया और राज्यकाल के दुर्लभ चित्रों को निहारकर भाव विह्वल भी हुए। समय व्यतीत होता गया और अन्ततः 12 दिसम्बर सन् 2012 ई. को झालावाड़ में मूल बीज के रूप में अंकुरित हुआ, यह महान कला तपस्वी अन्ततः संगीत के महाकाश में सदा–सदा के लिये विलीन हो गया। बस साथ छोड़ गया ऐसी स्मृतियाँ जो हृदय में आज भी जीवन्त हैं।

यहाँ प्रस्तुत हैं उनसे ली तब की एक आत्मीय भेंटवार्ता के कुछ सम्पादित अंश –

- **पंडित जी, झालावाड़ में आप दशकों बाद पधारे, इस दौरान आपको कैसी अनुभूति हुई.**

– झालावाड़ की धरती मेरे पूर्वजों की स्मृतियों व मुझसे व्यक्तिगत जुड़ी हुई है। सचमुच लगा कि आज मैं वर्षों बाद अपने घर लौटा हूँ। 4–5 माह का जब मैं अपनी माँ के पेट में था, तब मैं झालावाड़ ही था। यहीं मेरे पिता झालावाड़ राजराणा भवानी सिंह के दरबार में दीवान थे।

- **आपकी भाषा में संगीत कला क्या है ?**

– संगीत कला भगवत सिद्धि का माध्यम है, और राग भी वही है जो मन पर असर पहुंचाए, सितार वादन या कोई भी संगीत एक उपासना है। किसी भी कला को मुखरित करने के लिए उसकी साधना ही सर्वोत्तम माध्यम होती है।

- **विदेशों में भारतीय संगीत की प्रस्तुति के बारे में आपके विचार ?**

– विदेशों में भारतीय शास्त्रीय संगीत सुनने और सीखने की ललक है, यदि संगीतकार संगीत को वास्तव में अपनी साधना से प्रस्तुत करे तो यह अवश्य प्रभावी रहेगा, चाहे उस दौरान उसकी प्रस्तुति में विदेश की संगीतकला का मिश्रण ही क्यों न हो।

- **क्या आपने ऐसी प्रस्तुति का प्रयोग किया है ?**

– हाँ ! मैंने भारतीय संगीत को विदेशों में स्थाई स्वरूप देने के लिये 'किन्नर स्कूल आफ म्यूजिक' की स्थापना की, (यह बात पंडित जी ने साक्षात्कार के समय फरवरी 1991 ई. में कही थी)। इसे आज विदेशों में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त है.

- **आपने कौन–कौन सी रागों का आविष्कार किया है ?**

– मैंने अभी तक सैकड़ों गीतों की बंदिशों सहित अनेक रागों को मिलाकर कई रागों की उत्पत्ति की है, जिनमें नट भैरव, बैरागी, तिलक, श्याम, रसिया, कामेश्वरी, गंगेश्वरी, परमेश्वरी आदि। इसी दौरान मैंने 'मारूत्तम' व 'कर्नाटकी' राग को भी अपने संगीत में अपनाया है तथा भारतीय व पाश्चात्य संगीत के मिश्रण पर एक आरर्क्रेस्ट्रा भी तैयार किया है।

- **नवोदित युवा संगीतकारों को आपका सन्देश ?**

– उन्हें संगीत का निरन्तर अभ्यास करना चाहिये और यह कला उन्हें अपने अन्तर्मन से ग्रहण करना चाहिये, तभी वह कला की महत्ता को समझने व उसे प्रस्तुत करने में सफल सिद्ध हो सकेंगे। इसलिये उन्हें संगीत के प्रत्येक बिन्दु को ग्रहण करने हेतु एकाग्रचित रहना चाहिये।

'अनहद', जैकी स्टूडियो, 15 मंगलपुरा, झालावाड़- 326001 (राज.)
मो.- 98298 96368

आलेख

बनावट और दिखावे से कोसों दूर – उस्ताद अब्दुल लतीफ़ खाँ

हैं और भी दुनियां में सुखनवर बहुत अच्छे,
कहते हैं कि ग़ालिब का है अंदाजे बयां और।

मिर्ज़ा असद उल्लाह खाँ गालिब ने यह शेर खुद अपने लिये कहा था, और लफ्ज़-ब-लफ्ज़ सही था। लेकिन यहां, मैं यह शेर जिस फ़नकार के लिये कह रहा हूँ, उस पर भी यह सौ फ़ीसदी सही साबित होता है। यानी अपने फ़न में उसका अन्दाज भी सबसे निराला है। मेरी मुराद हिन्दुस्तान के माया-ए-नाज, सुविख्यात सारंगी नवाज़ उस्ताद अब्दुल लतीफ़ खाँ से है।

बनावट और दिखावे से कोसों दूर, सरल और सादा मिज़ाज, मृदुभाषी, हर बात पर मुस्कुरा देने वाले, खुश अख़लाक़, उस्ताद अब्दुल लतीफ़ खाँ ने, अपनी जिन्दगी में बहुत चढ़ाव उतार के साथ, कठिन और लम्बी साधना के बाद, यह मुकाम हासिल किया है।

वह सन् 1926 में होली के मुबारक रोज़, ग्वालियर के पास, गौहद नामक गांव में पैदा हुए। परिवार आर्थिक रूप से गरीब, किन्तु शास्त्रीय संगीत में अत्यन्त समृद्ध था। पिता उस्ताद छुट्टु खाँ के घर, बारह लड़कियों के बाद, बेटा पैदा हुआ। लिहाजा पैर ज़मीन पर नहीं पड़ते। यानी बहुत लाड़ प्यार में परवरिश हुई। परिवार में संगीत का ऐसा माहौल कि माँ जब अपने बेटे से लाड़-दुलार या उसका मन बहलाव करतीं, तो तबले के ठेके और बोलों से। खेल ही खेल में बच्चे के जहन में संगीत की पुख्ता बुनियाद, लय और ताल, रख दी गई। लेकिन अफ़सोस कि संगीत की ऐसी बुनियाद रखने वाली माँ, बहुत जल्द, चार-पाँच साल के बेटे को छोड़कर, इस दुनिया से रूख़सत हो गयीं। उसके बाद चाची ने परवरिश की जिम्मेदारी ऐसे निबाही, कि जिन्दगी भर माँ की कमी महसूस न होने दी।

खाँ साहब जब सात-आठ साल के हुए, तो खानदानी परम्परा के अनुसार, बड़े बाबा उस्ताद हद्दू खाँ ने, जो गायन और सारंगी वादन दोनों ही फन में बेजोड़ थे, सारंगी हाथ में देकर बाकायदा तालीम शुरू कराई। पूरे खानदान में अकेला लड़का था। बाबा, पिता और चाचा सब चाहते थे कि अपनी सारी कला, ज्ञान और हुनर जल्द से जल्द सिखाकर उसे पारंगत बना दें। इसीलिये बाबा हटते तो पिता, पिता जाते तो चाचा, सबक़, रियाज और मश्क़ के लिय सवार रहते। दो-ढाई साल में बच्चे का हाथ चल निकला.

– श्याम मुन्शी

हाथ अच्छा चलता देख, अपने वक्त के लाजवाब सारंगी वादक उस्ताद सिकन्दर खाँ, जो लतीफ़ खाँ साहब के जीजा भी थे, शागिर्द करा दिया गया। उस्ताद और शागिर्द दोनों बहुत खुश थे। खूब तालीम, रियाज़ और महनत होने लगी। लेकिन यह सिलसिला ज्यादा दिन नहीं चल सका। कुछ ही बरस बाद उस्ताद सिकन्दर खाँ का इन्तकाल हो गया। इस हादसे ने खाँ साहब को ज़बरदस्त सदमा पहुंचाया। वह बहुत गुम-सुम से रहने लगे। काफी दिन इसी तरह से गुजरे। फिर पिता, चाचा और बाबा ने कुछ समझाकर, कुछ बहलाकर, तालीम और रियाज़ के लिये बैठाना शुरू किया। वक्त ने हालात सामान्य किये। सब कुछ फिर, पहले जैसा चलने लगा।

अब खाँ साहब के नन्हें हाथों में सुर और तैयारी दोनों नज़र आने लगीं। घर में आते जाते, दूसरे उस्ताद सुनकर पीठ ठोंकते, शाबाशी और दुआएं देते। अभी उम्र बारह के आस-पास ही थी, लेकिन सारंगी उम्र से काफी आगे बज रही थी। एक रोज का वाक़या है, उस इलाके की प्रसिद्ध गायिका का कार्यक्रम था। लेकिन उन्हें संगत के लिये कोई सारंगी वादक (सिवाय बारह वर्षीय खाँ साहब के) उपलब्ध नहीं था। उस ज़माने में सारंगी के बिना गाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। लिहाज़ा उन्हें मजबूर होकर 12-13 साल के नन्हें सारंगी वादक को ही अपने साथ खड़ा करना पड़ा। जी हाँ, खड़ा करना पड़ा। (क्यूंकि उस जमाने में गायिकाएं खड़े होकर ही गाती थीं, और उनके सारे संगतकार भी अपने-अपने साज़ पेट से बाँधकर खड़े होकर ही बजाते थे) लेकिन उस दिन नन्हें सारंगी वादक ने ऐसी सूझ-बूझ से संगत की, कि सुनने वाले झूम उठे। गायिका ने नन्हें किन्तु अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि सारंगी वादक की खूब तारीफ की, बलाएं लीं। अब धीरे धीरे संगत का सिलसिला ही शुरू हो गया। लेकिन यह सिलसिला शुरू ही हुआ था, कि पिता उस्ताद छुट्टु खाँ और कुछ दिन बाद बाबा उस्ताद हद्दू खाँ नहीं रहे। इन दो-

दो मौतो से न सिर्फ दुख का पहाड़ टूटा, बल्कि एक बहुत बड़े परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी भी नन्हें कन्धों पर आ गई.

गौहद में उन दिनों रोजी रोटी तो थी, लेकिन आगे तालीम का कोई इन्ताम नहीं था। लिहाजा दिल्ली की तरफ कूच किया, जहां सारंगी के माहिरेफ़न रहा करते थे। लगभग साल डेढ़ साल भटकने के बाद गुरु मिले। अपने समय के महान सारंगी वादक उस्ताद बड़े, गुलाम साबिर खाँ, अम्बाले वाले। गुणी उस्ताद ने जांच परख कर खाँ साहब को अपना शिष्य स्वीकार किया। अब दिल्ली में दिन तालीम और रियाज में गुजरता, तो रात में गुजारे के लिये गायिकाओं की संगत। यहां यह तालीम रियाज़ और संगत सन् 1947 तक पूरे ज़ोर-शोर से जारी रही। लेकिन 47 के विभाजन की आग ने इसे भी स्वाहा कर दिया। परिवार, जो कि गौहद में था, दिल्ली में खाँ साहब को बेचैन कर दिया। उस्ताद बड़े गुलाम साबिर खाँ साहब ने बड़े बेमन से अपने अज़ीज शिष्य को, फ़ौरन गौहद जाने का हुक्म दिया। गौहद में एक अजीब दहशत का माहौल था। खाँ साहब फौरन ही गौहद के दूसरे लोगों के साथ, अपने परिवार को लेकर, सुरक्षित स्थान की तलाश में, भोपाल आ गये। लगभग एक साल, बैरागढ़, भोपाल, के शरणार्थी शिविर में गुजारने के बाद, जब हालात ठीक हुए तो अपने घर गौहद पहुंचे। इस दौरान उन्हें रोजी रोटी के लिये ठेला धकाने से लेकर मजदूरी तक करना पड़ा।

गौहद पहुँचने पर परिवार के लोगों ने एक और बड़ी जिम्मेदारी सौंप दी। यानी आपकी शादी कर दी गयी। कुछ दिन गौहद में रहने के बाद अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिये काम की तलाश में झांसी आ गये। झांसी में आपने महसूस किया कि सारंगी वादकों के लिये ज्यादा गुंजाइश नहीं है। मजबूरन बड़े परिवार के भरण पोषण की खातिर बहुत दुख के साथ सारंगी छोड़कर, तबला और हारमोनियम बजाना शुरू किया। कुशाग्र बुद्धि और मेहनत से आपका नाम बहुत जल्दी कुशल हारमोनियम और तबला वादक के रूप में स्थापित हो गया। धीरे-धीरे कमाई भी अच्छी होने लगी। ज़िन्दगी की गाड़ी इसी तरह लगभग आठ साल चलती रही। एक दिन खाँ साहब के एक मित्र जो स्वयं सारंगी वादक थे, खाँ साहब, पर सारंगी छोड़ तबला, हारमोनियम बजाने पर बहुत तीखा व्यंग्य कर दिया। खाँ साहब को बहुत गहरी ठेस पहुंची। खाँ साहब झांसी छोड़ भोपाल आ गये, और आठ साल पहले छोड़ी हुई सारंगी, पूरी अक़ीदत और दुगने जोश के साथ अपने सीने से लगा ली। प्रण किया कि चाहे कुछ हो जाये अब मैं सारंगी ही बजाऊंगा.

सन् 1955 में भोपाल आकर खाँ साहब ने अपने दिन बहुत तंगदस्ती और परेशानी में गुजारे। दो साल ऐसा जबरदस्त रियाज़ किया कि सूरज कब निकलता है और कब डूबता है होश ही नहीं रहा। सन् 1957 में आप विभागीय कलाकार के रूप में आकाशवाणी भोपाल से जुड़ गये। धीरे-धीरे खाँ साहब ने सारंगी में अपनी विशिष्ट वादन शैली विकसित की। इसी वादन शैली ने खाँ साहब को दूसरे सारंगी वादकों से अलग एक गरिमामयी स्थान दिलाया। देखते ही देखते खाँ साहब की सारंगी ने ऐसी जादू किया, कि हर कलाकार और संगीत प्रेमी आपका दीवाना हो गया। हर संगीत सम्मेलन के लिये आप अनिवार्य हो गये। दूर-दूर से खाँ साहब को अपनी कला प्रदर्शन के लिये बुलावे आने लगे। सारे भारत में आपकी मीठी, सुरीली और विशिष्ठ शैली ने आपका नाम रोशन कर दिया। गुणी जनों ने आपकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

उस्ताद अब्दुल लतीफ़ खाँ आकाशवाणी के सर्वोच्च श्रेणी (टॉप ग्रेड) कलाकार होने के साथ ही आकाशवाणी द्वारा ''आकाशवाणी सम्मान'' तथा ''उस्ताद'' के खिताब से विभूषित हैं। आपको केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी का ''राष्ट्रीय पुरस्कार'' तथा मध्यप्रदेश शासन का ''शिखर सम्मान'' भी प्राप्त हो चुका है। इनके अलावा देश के विभिन्न हिस्सों के कला प्रेमियों ने अनेक सम्मानों और पुरस्कारों द्वारा उनकी कला के प्रति अपना आदर और प्यार प्रदर्शित किया है।

उस्ताद अब्दुल लतीफ खाँ की वादन शैली को शास्त्रीय शुद्धता, दर्जा-ब-दर्जा बढ़त, लयकारी, सपाट और गमक की गमक की तानों के मीठे तथा सन्तुलित सामंजस्य ने गंभीर, प्रभावकारी एवं गरिमामयी बना दिया है। उनकी वादन शैली उनकी दीर्घकालीन कला साधना, गहन कल्पनाशीलता का सबूत है, जो कहीं और देखने को नहीं मिलती। वर्तमान में सारंगी पर लुप्त प्राय: टप्पा शैली बजाने वाले खाँ साहब अकेले हैं।

इनके अलावा खाँ साहब लगभग 25 अन्य वाद्य अधिकारपूर्वक बजाते हैं, जबकि सारी ज़िन्दगी में एक साज़ साधना मुश्किल होता है। शायद यह कुदरत का एक करिश्मा ही हो सकता है।

मैं उस्ताद अब्दुल लतीफ खाँ से सन् 1955 से ही जुड़ा हुआ हूँ। मुझे उनकी ज़िन्दगी को बहुत करीब से देखने का मौका मिला है। इन 45 बरस में खाँ साहब की ज़िन्दगी में बहुत चढ़ाव - उतार आये हैं जिनका मैं गवाह रहा हूँ। मैंने उनकी तंगदस्ती और संघर्ष का दौर देखा है, और उनकी खुशहाल जिन्दगी भी, लेकिन उनके मिज़ाज और मिलनसार तबियत में किसी तरह का कोई फ़र्क नहीं देखा। वह हर एक से उसी मोहब्बत से पेश आते हैं जैसे पहले। इतना नाम और शोहरत हासिल होने के बाद भी गुरूर या घमण्ड उनके करीब भी नहीं आया। इस जबरदस्त व्यवसायिकता के दौर में भी वह कभी अपने कार्यक्रम का पारिश्रमिक तय नहीं करते, जो खुशी से दिया जाता है उसे ही सहर्ष स्वीकार करते हैं। यह फक़ीर सिफ़त खूबियां सिर्फ एक सच्चे कलाकार में ही हो सकती हैं।

ज़र्फ़ लाज़िम है मैं कशी के लिये
ऐसे वैसे से पी नहीं जाती.

- 'गंधार' बी-2, कमला नगर कोटरा, भोपाल फोन-0755-773947 ■

आलेख

योग एवं संगीत में गुरु-शिष्य का अंत: संबंध

- जागृति

गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई।।

भारतीय शिक्षण जगत् में गुरु का स्थान सर्वोच्च माना गया है। प्राचीन समय में गुरुकुल में रहकर, गुरु की सेवा करके कठोर अनुशासन, नियमित एवं संयमित जीवन बिताते हुए एवं सतत् साधना करते हुए गुरु द्वारा दी गई सम्पूर्ण शिक्षा को पूरा कंठस्थ करना ही शिक्षा का साधन था। गुरु ने अपनी तपस्या, साधना और प्रयोगों से जितना ज्ञान अर्जित किया वह सब उसने अपने शिष्यों में प्रदान कर दिया। शिष्यों ने अपने गुरु द्वारा ग्रहण की हुई विद्या को सहेजा, संवारा और उसे अपनी साधना और प्रयोगों द्वारा अधिक पल्लवित और विकसित किया। गुरु मुख से सुन समझकर ही संगीत एवं योग का सही ज्ञान सम्भव है। इसलिए इसे 'गुरु-मुखी' विद्या भी कहते हैं। गुरु मुख से संगीत एवं योग साधना में बल प्राप्त होता है। वस्तुत: प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा ने ही संगीत एवं योग विद्या को अधिक समृद्ध और सम्पन्न बनाया है.

योग से मनुष्य शरीर, मन और मस्तिष्क को साधता है, वही संगीत हमारी आत्मा को शुद्ध करती है.

'''योग' शब्द संस्कृत के युज् धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जोड़ना'। अंग्रेजी का 'योक' (YOKE) शब्द भी उसी धातु से बना है। आरम्भ में अंग्रेजी के 'YOKE' और संस्कृत के 'योग' का शाब्दिक भाव एक ही था। 'युज्' धातु का अर्थ है किसी वस्तु से अपने को जोड़ना अथवा किसी कार्य में अपने को लगाना। दूसरे शब्दों में आत्मा को परमात्मा से मिलाने में जिस साधन का आश्रय लिया जाता है अथवा आध्यात्मिक पूर्णता के लिए जो प्रक्रिया काम में ली जाती है उसे भी 'योग' कहते हैं।''

संगीत एक सम्मोहन विद्या है, एक सहज आनंद की रसानुभूति है, जहां व्यक्ति सबकुछ भूलकर अपने को सहजानंद की स्थिति तक पहुँचा देता है। तन्मय हो जाने का भाव, अनन्य साधना की स्वर-लहरी है संगीत जो सर्वसाधारण को आकृष्ट करती है। शायद इसी बात से प्रभावित होकर हमारे ऋषिमुनियों ने इस परिष्कृत विशुद्धतम कला को ईश्वर एवं जीव के मिलन का साधन सिद्ध किया है, जिसके द्वारा आध्यात्मिक साधन तथा पहुँच सम्भव होती है। मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय संगीत एवं योग वैदिक काल से ही आध्यात्मिक धरातल पर आसीन रहा है, क्योंकि योग व संगीत दोनों को ब्रह्म-चिन्तन का साधन स्वीकार किया गया है जो सिद्ध गुरु को आशीर्वाद द्वारा स्वप्रयास से धीरे-धीरे साधना परिपक्व होती है और अन्त में परमानुभूति की प्राप्ति होती है।

''सामान्यत: योग का अर्थ है स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना। वृत्तियां जितनी बहिर्मुखी होती जाएंगी, उतनी ही उनमें रज और तम की मात्रा बढ़ती जाएगी और इसके विपरीत जितनी वे अन्तर्मुख होती जाएंगी उतना ही रज और तम के तिरोभाव पूर्वक सत्तत्व का प्रकाश बढ़ता जाएगा। जब कोई भी वृत्ति नहीं रहती, तब शुद्ध परमात्मा स्वरूप शेष रह जाता है।'' संगीत कला भी एक योग है। जो सिद्धि योग-साधना से प्राप्त होती है, वही सिद्धि संगीत-साधना से भी प्राप्त होती है। योगी ध्यान तथा समाधि द्वारा ब्रह्म-नाद को प्राप्त करता है। इसी तरह संगीत-साधक संगीत में प्रयोग होने वाले तत्व व स्वर-लय तथा नाद द्वारा अपने ध्यान को ईश्वर-उपासना में लगाता है तब वह अन्तर्मुखी हो जाता है। योग व संगीत दो अलग रास्ते हैं, परन्तु उनका उद्देश्य एक ही है-मोक्ष प्राप्ति। जो योग्य गुरु के सान्निध्य में सिद्ध होती है। दोनों साधकों को समान रूप में साधना में होने वाली कठिनाइयों का सामना, परिश्रम, अध्ययन आदि का पालन करना पड़ता है। जिस प्रकार अष्टांग योग के आठों अंगों का प्रयोग योग-साधना में अनिवार्य है, उसी प्रकार इन आठ अंगों का प्रयोग आध्यात्मिक अथवा धार्मिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण है। ये आठ नियम इस प्रकार से हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन्हें क्रम से साधने पर चित्त भी शुद्ध होता है, जो दोनों साधनाओं में अनिवार्य है। यमों द्वारा हम अपने बाह्य आचरण सम्बन्धी सुधार कर सकते हैं। यमों की संगीत में भी महती आवश्यकता है। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि यमों को योग तथा संगीत की साधना करने वाले साधक को अपने आचरण में लाना पड़ता है, जिससे बाह्य आचरण से शुद्धता आती है तथा वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।''

नियम, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान का मानव जीवन में, विशेषरूप से योग साधक तथा संगीत साधक के लिए अत्याधिक महत्व है, जो सद्गुरु के मार्ग दर्शन में ही सम्भव है, जिसे किसी गुरु की सहायता से साधा जा सके। योग तथा संगीत साधना में चित्त की वृत्तियों का निरोग आवश्यक है। इनको रोकने का उपाय सर्वप्रथम शरीर स्थिर करना है। इसीलिए साधक को जप, ध्यान आदि सिद्धि के लिए काफी समय तक शरीर को स्थिर करके बैठना

पड़ता है। किन्तु अभ्यास न होने से कभी पाँवों में दर्द होने लगता है। कभी सूजन भी आ जाती है। इसीलिए ऐसा कोई भी आसन, जिसपर सुखपूर्वक लम्बे समय तक बैठा जा सके, श्रेष्ठ आसन है। महर्षि पतंजलि ने इसके लिए कहा है- 'स्थिर सुखमासनम्'। आसन सिद्धि से चित्त की चंचलता दूर होती है। संगीत साधना और योग साधना में जिस प्रकार आसन लगाना है, उसका प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए तथा अभ्यास से उसमें प्रौढ़ता लाना चाहिए। प्राणायाम का अर्थ प्राण का व्यायाम है। संगीत एवं कंठ साधना में इस साधन का बड़ी सरलता से अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है, विशेषकर खरज-साधना में।

'संगीत कल्प दर्शन' अथवा 'नादब्रह्म' का विकास योगमत के व्यावहारिक रूप के प्रभाव से हुआ था। इसमें योगमत के उस शरीर विज्ञान को मान्य ठहराया गया जिसमें मानव के भौतिक शरीर में चक्रों को प्रतिपादित किया गया।

पं. शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' में उल्लिखित है- ''योगदर्शन के अनुसार, आत्मा में ध्वनि उत्पन्न करने की इच्छा होने पर वह मन को प्रेरित करती है, मन देह में स्थित अग्नि पर आघात करता है जो वायु को प्रेरित करती है। तब ब्रह्मग्रन्थि में स्थित वायु क्रम से ऊपर उठती है और नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा और मुख में ध्वनि का आविर्भाव करती है। यह ध्वनि अथवा नाद पांच प्रकार का होता है- अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, अपुष्ट, पुष्ट और कृत्रिम मुख में। 'नाद' शब्द में नकार प्राणबीज तथा 'दकार' अग्नि का द्योतक है। अर्थात् नाद की उत्पत्ति नाभिस्थान में प्राण वायु एवं अग्नि के संयोग से उत्पन्न उत्तेजना विशेष द्वारा होती है।''

दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वायु जन्य पूरक, कुंभक एवं रेचक क्रियाओं के द्वारा समाहित कंपन ही योग का विषय बन जाता है। संक्षेपत: यह कहा जा सकता है कि स्थूल एवं सूक्ष्म, दोनों प्रकार की अभिव्यक्तियों के लिए शरीर के अंतर्गत वर्तमान अनेक स्थानों का उपयोग किया जाता है। जब वायु का संयोग इन स्थानों के साथ होता है, तब अभिव्यक्ति के मूल कारणों का पता चलने लगता है। ध्वनि उत्पत्ति की इस प्रक्रिया में विद्वान मनीषी ने मनुष्य के शरीर में स्थित इन स्थानों को चक्रों के नाम से पुकारते हैं, जिसका संगीत में सर्वाधिक महत्व है। जो योग्य गुरु के मार्गदर्शन में ही सिद्ध किया जा सकता है।

-एम.एम.-67, जी.-1, डी.एल.एफ अंकुर विहार, लोनि; गाजियाबाद-201102 ■

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. योगांक- स्वामी श्री अभेदानन्द जी, पीएच. डी., गीता प्रेम, पृष्ठ-125
2. योग दर्पण- स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती, पृष्ठ-43
3. पतंजलि योगसूत्र, पृष्ठ-71
4. संगीत रत्नाकर- पं. शारंगदेव, प्रथम भाग, प्रथम अध्याय नादस्थान, पृष्ठ-64

- निर्मिश ठाकर

आलेख

दिल्ली घराने के सुप्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद फैयाज खाँ

-अनिल कुमार शर्मा

उस्ताद फैयाज खाँ का जन्म 16 अक्टूबर 1935 को जिला सीकर, राजस्थान के संगीतज्ञ परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम उस्ताद नजीर खाँ था। उस्ताद नजीर खाँ एक अच्छे तबला वादक थे। यह सारंगी भी बहुत अच्छा बजाते थे व गाना भी अच्छा गाते थे। फैयाज खाँ को सर्वप्रथम तबला की शिक्षा इनके पिता उस्ताद नजीर खाँ से प्राप्त हुई। फैयाज खाँ के बड़े भाई उस्ताद हिदायत खाँ सन् 1944 में दिल्ली आकर बस गये और दिल्ली को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया। सन् 1952 में फैयाज खाँ को इनके बड़े भाई उस्ताद हिदायत खाँ ने दिल्ली बुला लिया। उस समय इनकी उम्र महज 10 वर्ष की थी। फैयाज खाँ दिल्ली में ही उस्ताद आमिर खाँ साहब से तबला सीखने लगे। उस दौरान कुछ वर्षों बाद जयपुर आकाशवाणी केन्द्र में विभागीय कलाकार की नौकरी मिल गई। इन्होंने कुछ साल बाद दिल्ली के आकाशवाणी केन्द्र में ट्रान्सफर करवा लिया और दिल्ली में रहने लगे। यहाँ सभी संगीत समारोह को सुनने के लिए जाया करते थे। और इनको संगीत का शौक लगा। और लोगों से कहते संगीत गाना बजाना यही है। फिर फैयाज खाँ ने तबला पर रियाज़ करते और अपने बड़े भाई उस्ताद हिदायत खाँ से तबला की तालीम लेते रहते थे। उस्ताद हिदायत खाँ एवं फैयाज खाँ दिल्ली के विनय नगर में रहते थे। यहीं दक्षिण भारत के विद्वान पंडित रामनाथ ईश्वरन से दक्षिणी ताल संगीत की शिक्षा प्राप्त की। सन् 1964-65 में फैयाज खाँ व इनके भाई चाँदनी महल में नीचे रहने लगे। यहाँ चाँदनी महल के ऊपर दो-तीन हफ्तों के लिए उस्ताद गामी खाँ साहब रुके हुये थे। उस्ताद गामी खाँ ने फैयाज खाँ का तबला सुना। फैयाज खाँ के बड़े भाई उस्ताद हिदायत खाँ ने उस्ताद गामी खाँ साहब से कहा कि आप फैयाज खाँ को तबला सिखाओ और वह तैयार हो गए। वह बोले ठीक है मैं सिखाऊँगा। लेकिन उस्ताद गामी खाँ के बड़े बेटे शौकत अली दिल्ली से ट्रान्सफर कराकर पाकिस्तान चले गये, साथ में उस्ताद गामी खाँ साहब भी पाकिस्तान चले गये। इनसे फैयाज खाँ तबला नहीं सीख सके। दिल्ली में उस्ताद इनाम अली खाँ साहब थे, इनसे फैयाज खाँ ने तबला की काफी तालीम ली। चाँदनी महल में रहकर फैयाज खाँ ने 10-10 घंटे-12-12 घंटे तबले पर रियाज किया। फैयाज खाँ चाँदनी महल से सुईवालन जाते और वहाँ उस्ताद चाँद खा साहब, उस्ताद उस्मान खाँ साहब, इनके लड़के हिलाल खाँ, उस्ताद बुन्दु खाँ साहब, मोनू खाँ साहब, मकबूल हुसैन, फते मोहम्मद, मजीद जी के पिता महमूद खाँ साहब, और महमूद जी के पिता उस्ताद विलायत हुसैन खाँ जो हर राग में व हर ताल में गजल गाते थे। इन सभी उस्तादों के बीच रहकर सुईवालन में कभी- चाय की दुकान पर कभी बाहर मैदान में, कभी होटल में रोज सुबह शाम संगीत की चर्चा किया करते थे। बहुत कुछ इन लोगों से सीखने का मौका प्राप्त हुआ। फैयाज खाँ ने सन् 1953 में पहली बार स्वतन्त्र तबला वादन प्रस्तुत किया। फैयाज खाँ ने 1954 में पहली सांगीतिक यात्रा अफगानिस्तान की, की। इनके साथ रसूलन बाई, उस्ताद अली अकबर खाँ, पंडित किशन महाराज, आकाशवाणी के संतराम जी, उस्ताद साबरी खाँ, जसवन्त सुरजीत जी वायलिन वाले, उषा सेठ यह सभी गये थे। पन्द्रह दिन की यात्रा बहुत अच्छी थी। उस समय शाह जी का जमाना था बादशाह ने बुलाया था। वहाँ बहुत अच्छा गाना-बजाना हुआ। अफगानिस्तान

के उस्तादों का भी इन्होंने खूब गाना-बजाना सुना। पंडित चतुर लाल जी का सन् 1965 में स्वर्गवास हो गया। इसके बाद सन् 1966 में शरान रानी जी ने फैयाज को तबला संगत के लिए अमेरिका ले गईं। 1967 में पंडित देबू चौधरी जी के साथ तबला संगत करने अमेरिका गये। 1970 में महमूद मिर्जा के साथ भी अमेरिका गए और 1970 में ही आकाशवाणी केन्द्र की नौकरी छोड़ दी। 1971 में महारानी एलिजाबेथ हाल लंदन में भी तबला सोलो का कार्यक्रम दिया। बीच-बीच में विदेशों में कार्यक्रम होने के कारण आकाशवाणी छोड़ना पड़ा था। सन् 1976 में आकाशवाणी केन्द्र दिल्ली में दोबारा ज्वाइन कर लिया। फैयाज खाँ को वाशिंगटन युनिवर्सिटी अमेरिका के डेनियल ने पत्र भेजा कि आप अमेरिका आ जाओ और यहाँ हमने परमीशन ले ली है। फैयाज खाँ साहब ने डेनियल से कहा हमें तो अंग्रेजी आती नहीं है तो हमें बुलाकर क्या करोगे। फैयाज खाँ साहब ने कहा "मैं कैसे सिखाऊँगा तबला"? तब डेनियल ने कहा अंग्रेजी तो बच्चा-बच्चा जानता है लेकिन तबला बजाना नहीं जानते इसीलिए आपको बुला रहे हैं। फैयाज खाँ साहब ने हाँ कर वाशिंगटन युनिवर्सिटी में 9 महीने तबला सिखाया। 1983-1984 में पाकिस्तान गए, वहाँ इनके ताया एवं ससुर रहते थे। पाकिस्तान में उस्ताद सलामत अली, उस्ताद नजाकत अली, उस्ताद नियाजी खाँ, मेहंदी हसन, गुलाम अली के साथ बजाया। आकाशवाणी की 50 वीं वर्ष गाँठ पर दिल्ली में रोशनआरा बेगम का कार्यक्रम रखा गया। रोशनाआरा बेगम ने पाकिस्तान से दिल्ली पत्र लिखा कि हमारे साथ तबले पर संगत के लिए फैयाज खां साहब को एवं सारंगी पर शकूर खाँ साहब को ही संगत के लिए बुलाया जाए। रोशनआरा बेगम के साथ मल्लिका पुखराज भी आयी थीं। उस्ताद फैयाज खाँ ने उस्ताद अमीर खाँ साहब, उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ साहब, भारत रत्न पंडित भीमसेन जोशी, भारत रत्न पंडित रविशंकर जी, उस्ताद हाफिज अली खाँ साहब, बेगम अख्तर पंडित पन्ना लाल धोष, विदुषी सिद्धेश्वरी देवी, विदुशी गंगू बाई हंगल, पंडित मल्लिका मंसूर, उस्ताद अली अकबर खाँ, उस्ताद विलायत खाँ, पंडित निखिल बनर्जी, पंडित हरि प्रसाद चौरसियां, पंडित अजय चक्रवर्ती, उस्ताद अमजद अली खाँ, बेगम प्रवीण सुल्ताना, पंडित राजशेखर, पंडित लक्ष्मण कृष्ण राव, विदुषी शरन रानी, पंडित देबू चौधरी आदि नामी कलाकारों के साथ देश-विदेशों में सफल तबला संगत कर दिल्ली घराने का नाम रोशन किया।

उस्ताद फैयाज खाँ संगत करने में तो माहिर थे ही, वह स्वतन्त्र तबला वादन में भी उच्च स्तर के तबला वादक थे।

उस्ताद फैयाज खाँ को संगीत क्षेत्र में योगदान के लिए कई पुरस्कारों से नवाजा गया। आपको गोल्ड मेडल श्रेष्ठ वादन हेतु प्राप्त हो चुके हैं। आपको राजस्थान अकादमी पुरस्कार व 1990 में साहित्य कला परिषद पुरस्कार, 1993 में सुर सिंगार समिति मुम्बई द्वारा ताल विलास पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

उस्ताद फैयाज खाँ के शिष्यों में मुख्य शाहबाज खाँ, शमीम खाँ, जमीर खाँ (डेंकर, अमेरिका टैड, अमेरिका उदित) लंदन आदि हैं, जो अच्छा तबला बजा रहे हैं।

फैयाज खाँ का देहावसान 12 नवम्बर 2014 में दिल्ली में हुआ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. खाँ, उस्ताद फैयाज, सुप्रसिद्ध तबला वादक, दिल्ली के उनके आवास पर दिनांक 28 मार्च 2010 को लिए गए साक्षात्कार से प्राप्त तथ्य।

2.मिश्र, रमेश, दिल्ली घराने का संगीत में योगदान, संस्करण 2001, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 219।

3. इन्टरनेट से प्राप्त तथ्य।

-(शोधार्थी) संगीत विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राज.) मो.- 94177 43319

|| कला समय ||

आगामी अंक

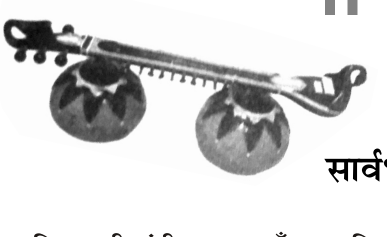

सार्वभौमिक संगीत पर एकाग्र : भाग - 2

अगस्त-सितम्बर 2018

विश्व की संगीत परम्पराएँ, गुरु-शिष्य परम्परा, लोक-लय, फ्यूजन, परिचय, साक्षात्कार सहित अन्य विशेष रोचक, पठनीय तथा शोधपरक सामग्री। इस अंक हेतु अपनी रचना, आलेख, चित्र, संस्मरण इत्यादि आमंत्रित हैं।

विशेष : आगे के अंकों में आजीवन सदस्यों एवं आजीवन सदस्यता प्राप्त संस्थाओं का विज्ञापन निःशुल्क प्रकाशित किया जावेगा। आप सभी से हमारा अनुरोध हैं कि 'कला समय' पत्रिका से जुड़ें एवं जोड़ें। इस सांस्कृतिक अनुष्ठान को आगे बढ़ाये।

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com - **संपादक**

ध्रुवपदों के प्रत्यक्ष गायन का दुर्लभ प्रकाशन

- **राम मेश्राम**

वर्ष 2016 में मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग द्वारा ग्वालियर शहर में आयोजित पांच दिवसीय तानसेन संगीत समारोह के पहले दिन 16 दिसम्बर को ''दुर्लभ ध्रुवपद'' नामक एक विरल संगीत ग्रंथ के प्रकाशन का लोकार्पण हुआ। 260 पृष्ठों का यह ग्रंथ के प्रकाशन उस्ताद उलाउद्दीन खाँ संगीत एवं कला अकादमी भोपाल द्वारा प्रकाशित किया गया है, जिसके ध्रुवपदों के मूल संकलनकर्ता- गायक स्व. पं. राधेश्याम डागुर ध्रुवपदकार थे जो पूर्व टीकमगढ़ रियासत के राज गायक थे। ग्रंथ का संपादन, स्वर लिपि संशोधन और ध्रुवपदों का गायन प्रो. (पं.) सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट ''रसरंग'' द्वारा किया गया है।

विशेष उल्लेखनीय यह है कि संगीत जगत में सर्वथा पहली बार ध्रुवपद गायन शैली की मध्यकालीन, राजा मानसिंह प्रणीत ''गौहरहार वाणी'' के ये 61 ध्रुवपद तानसेन जैसे विश्व संगीत समारोह के मंच पर किताब के रूप में और प्रत्यक्ष गायन में रसिक श्रोताओं के सामने आए हैं और अहम बात यह है कि इन ध्रुवपदों वाली 60 मिनट की सी.डी. (कॉम्पेक्ट डिस्क) भी उपरोक्त पुस्तक के साथ जारी की गई है। कहना न होगा कि इस सी.डी. ने ध्रुवपद ग्रंथ के लिखित ध्रुवपदों को पखावज संगत के साथ गायन के जरिये उनके मूल गायन से 400 साल बाद जीवंत कर दिया है, अन्यथा इस दुर्लभ ध्रुवपद ग्रंथ के ध्रुवपद सिर्फ संगीत विद्वानों या शोध करने वालों के ही काम के रह जाते और व्यापक जन समुदाय संगीत का सच्चा श्रवण यानी रस ग्रहण करने से वंचित रह जाता। अगले दिन 17 दिसम्बर 2016 को अपरान्ह ग्वालियर में संस्कृति विभाग की कला वीथिका के भवन में प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट का इन ध्रुवपदों पर व्याख्यान और गायन का प्रदर्शन खास तौर पर आयोजित हुआ।

इन ध्रुवपदों का इसलिये भी ऐतिहासिक महत्व है कि इनमें 11वीं सदी से लेकर 17वीं सदी तक भारत के तत्कालीन राजपूत राजाओं और मुगल शासकों के इतिहास का उल्लेख मिलता है जैसे- राग '**देवगिरि-बिलावल**' के ध्रुवपद में गायक **हरजू** दिल्ली के तत्कालीन शासक पृथ्वीराज चौहान (1166 से 1192 ईसवी) के विवाह के मांगलिक अवसर का वर्णन करता है। इसी प्रकार राग 'वृंदावनी सारंग' के ध्रुवपद में रचयिता ने शहंशाह अकबर का उल्लेख किया है, जबकि अकबर के दरबार के प्रमुख गायक तानसेन ने राग 'शुद्ध-कल्याण' के ध्रुवपद में बादशाह के पूरे नाम जलालुद्दीन अकबर का उल्लेख किया है और अकबर के ही दूसरे दरबारी गायक रामदास ने भी राग 'शुद्ध कल्याण' में अकबर का जिक्र किया है। एक और ध्रुवपद जो राग 'नट-रूपक' में है, में अकबर का उल्लेख हुआ है और राग '**श्री**' के ध्रुवपद में भी तानसेन ने अकबर का उल्लेख किया है। राग श्री के एक अन्य ध्रुवपद में मुगल बादशाह शाहजहाँ का उल्लेख मिलता है.

उत्तर मुगल कालीन अनन्य संगीत रसिक मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले (ईसवी) के दरबारी ध्रुवपदकार और खयाल गायन शैली के आविष्कारक महान संगीतज्ञ 'सदारंग' के दामाद खुसरो खाँ 'अदारंग' के एक ध्रुवपद में मुगल बादशाह आलमगीर 'औरंगजेब' का उल्लेख है। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर की गूजरी रानी 'मृगनयनी' के सौंदर्य का बखान करते श्रृंगार रस के दो ध्रुवपद क्रमश: राग 'तोड़ी' और 'यमन' में हैं।

इस संगीत ग्रंथ में जिन ऐतिहासिक ध्रुवपदकारों के ध्रुवपद संकलित हैं उनमें देवगिरि (वर्तमान औरंगाबाद-महाराष्ट्र) के इतिहास विख्यात संगीतज्ञ ध्रुवपदकार गोपाल नायक (1306,1320 ईसवी), नायक बैजू बावरा (1485 से 1514 ईसवी) तानसेन के गुरु स्वामी हरिदास डागुर, स्वयं तानसेन, रामदास, विलास खाँ (तानसेन के पुत्र) हैं, जबकि एक बहुत महत्वपूर्ण ध्रुवपद श्री वल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य का (1418-1518 ईसवी) का राग 'पूर्वी' में है। दो ध्रुवपदों के अतिरिक्त अन्य सभी 59 ध्रुवपदों की भाषा 'ब्रज' है। दो अपवाद ध्रुवपदों में एक सुजान मियां का राग 'सुघराई' में तत्कालीन उर्दू-हिन्दी मिश्रित ध्रुवपद है, जिसमें शिव स्तुति है.

''जालिम जुलुम एक जोगी जहर खाये, करता कहर वो, गले मुण्डमाला।''

दूसरा अपवाद ध्रुवपद, हिन्दवी (उर्दू + हिन्दी मिश्रित) भाषा में इमाम बख्श का है।

इस संकलन में आज प्रचलित गायन, वादन और नर्तन में गाए-बजाए जाने वाले रागों में निबद्ध ध्रुवपदों में राग भैरव के 6 ध्रुवपद, विभास के 3, ललित-2, देशकार-2, देशी-2, अल्हैया

बिलावल-1, बिलावल-2, शुद्ध कल्याण-2, तोड़ी-10, देवगिरि बिलावल-2, वृन्दावनी सारंग-2, गौड़ सारंग-1, पूरिया धनाश्री-1, पूर्वी-2, श्री-4, मालकौंस-1, झिंझोटी-1, इस प्रकार 50 ध्रुवपद प्रकाशित हैं जबकि अप्रचलित और अल्प प्रचलित रागों में राग सौराष्ट्र टंक में-1, गांधारी-1, बंगाल बिलावल-2, सुघराई-1, नट-1, अहेरी-1, शुक्ल बिलावल-2, मालश्री-1, मुल्तानी श्री-1, इस प्रकार 9 अल्प प्रचलित रागों में 11 ध्रुवपद दिये गये हैं। इसी प्रकार ध्रुवपद के अप्रचलित तालों में भी कुछ ध्रुवपद निबद्ध हैं जैसे राग तोड़ी- मीर को छक्का (11 मात्राओं, ताल छः वाला ताल) एक और तोड़ी- ब्रह्म ताल (14 मात्रा, ताल-10, खाली-4 पूर्णतः अप्रचलित ताल) राग अहेरी- चम्पक ताल (ताल-2, मात्रा-6 पूर्णतः अप्रचलित) राग-यमन पंचानन (ताल-5, मात्रा-14) ताल में प्रस्तुत है।

संगीत ग्रंथ और काम्पेक्ट डिस्क में जिन अन्य ध्रुवपदकारों के महत्वपूर्ण ध्रुवपद हैं उनमें स्वामी हरिदास डागुर के पिता 'आस धीरज' का राग 'भैरव' में ध्रुवपद, प्रेमदास (भैरव), अमृतराव (विभास), नंदराम डागुर (भैरव), कान्हरदास डागुर (श्री), गोपाल नायक (यमन) और स्वामी हरिदास डागुर (विहाग और मालकौंस) में निबद्ध ध्रुवपद सुनने लायक हैं।

इस ध्रुवपद ग्रंथ के साथ सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात ध्रुवपदों की गायन की सी.डी. का साथ होना है, जिसमें संकलित ध्रुवपदों को इस समीक्षक ने सुना है। ये सारे ध्रुवपद इस पुस्तक के संकलनकर्ता प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट द्वारा पखावज की संगत के साथ गाये गए हैं। ग्वालियर के वरिष्ठ पखावज और तबला वादक पं. मुन्नालाल भट्ट ने इन ध्रुवपदों के साथ काबिले तारीफ पखावज संगत करके इनमें जैसे जान ही डाल दी है। सी.डी. में गाये गए 13 रागों में भैरव, देशकार, देशी, अल्हैया बिलावल, तोड़ी, देवगिरि बिलावल, वृन्दावनी सारंग, पूर्वी, श्री, यमन, मालकौंस और झिंझोटी हैं।

दुर्लभ ध्रुवपद संगीत ग्रंथ के अतिशय कल्पनाशील प्रकाशन के लिए ग्रंथ संपादक (संगीत अकादमी के डिप्टी डायरेक्टर) श्री राहुल रस्तोगी एकमेव साधुवाद के पात्र हैं, जिन्होंने प्रकाशन में पुस्तक को पुरानी ताड़ पत्रीय पाण्डुलिपि की सौंदर्यमयी शक्ल दी है और ध्रुवपदों के रागों को मोती महल ग्वालियर की राग माला चित्रकला के नयनाभिराम राग-रागिनियों वाले चित्रों से सजाया है। यह संगीत ग्रंथ सी.डी. सहित राजा मानसिंह तोमर (1485 -1506 ईसवी) प्रणीत ध्रुवपद गायकी की गौहरहार वाणी शैली के अल्पज्ञात इतिहास को प्रकाश में लाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

- सी-72, विद्या नगर (निलय अस्पताल के पीछे) होशंगाबाद रोड, भोपाल-462026 ■

श्रद्धांजलि

अमृतलाल वेगड़

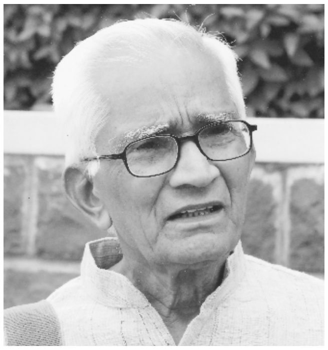

जन्म : 3 अक्टूबर 1928 — निधन : 6 जुलाई 2018

नर्मदा तुम सुन्दर हो, अत्यंत सुन्दर
अपने सौन्दर्य का थोड़ा प्रसाद मुझे दो
ताकि मैं उसे दूसरों तक पहुँचा सकूँ।

''कोई वादक बजाने से पहले देर तक अपने साज का सुर मिलाता है, उसी प्रकार इस जनम में तो हम नर्मदा परिक्रमा का सुर ही मिलाते रहे, परिक्रमा तो अगले जनम से करेंगे।''

गोपालदास 'नीरज'

जन्म : 4 जनवरी 1925 — निधन : 19 जुलाई 2018

आठ दशक तक फुल मस्ती से, कविताओं का रंग।
खूब जमाया श्री नीरज ने, मूल तरन्नुम संग।।
मूल तरन्नुम संग, हजारों बेहतर गीत लिखे।
कविता पढ़ते हुए सदा वे, सबसे मस्त दिखे।।
उनका जाना काव्य जगत के लिए बड़ा दुखदाई।
गोपालचरण में गोपालदास की, गई आत्मा भाई।।

- रामेश्वर शर्मा (साहित्यकार)
सदस्य, राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर (राजस्थान)

समीक्षा

सारंगी के स्वर : आत्मिक संवेदनाओं की स्वर लहरी

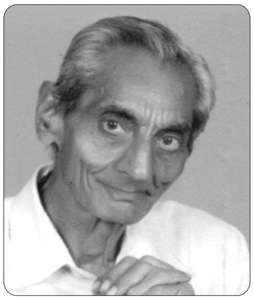

- राधेलाल बिजघावने

मनुष्य की पैदाइश के साथ संगीत जीवन से स्वत: जुड़ जाता है। संगीत की मधुर स्वरलहरी हर आदमी को आनंद विभोर कर देती है। यद्यपि संगीत की अपनी कोई भाषा नहीं होती फिर उसकी स्वर लहरी, राग रागिनियां मनुष्य को आनंदानुभूत कर देती हैं। यहां तक पशु-पक्षी और जानवर भी संगीत की आत्मसंवेदनाओं को समझ लेते हैं। बैजू बावरा के संगीत में इतनी ताकत थी कि उसके स्वराकर्षण से हिरण आ गये। बरसात हो गई।

संगीत एक ऐसी कला है जिसमें संगीतकार को जीवन भर सीखना और रियाज करते रहना पड़ता है। वैसे कला कोई भी हो- साहित्य, नाटक, नृत्य और पेंटिंग अथक परिश्रम और प्रतिदिन प्रेक्टिस करते रहने की मांग करती है। लापरवाह कलाकार की ग्रिप से उसकी कलात्मकता, उसकी ग्रिप सुर पकड़ से बाहर हो जाती है।

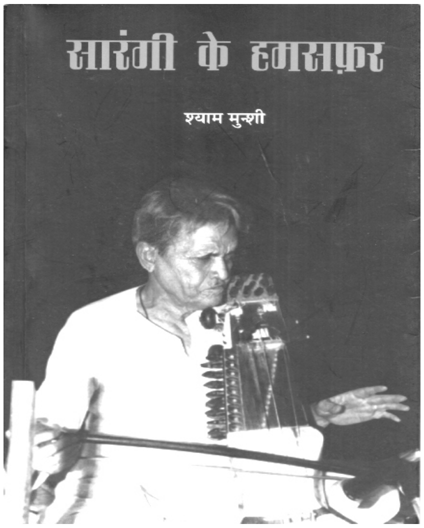

'सारंगी का सफर' पुस्तक में श्याम मुंशी ने सारंगी वादक अब्दुल लतीफ खाँ की सारंगी बजाने की अभिरुचि और उसमें विशेषज्ञ प्राप्त करने में आर्थिक, शारीरिक एवं पारिवारिक कितनी तकलीफें सही और इनसे संघर्ष करते हुए आज विश्व संगीत की दुनिया में एक महत्वपूर्ण कलाकार के रूप में अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। अब्दुल लतीफ शर्मीले स्वभाव के सारंगी वादक हैं और डरपोक भी, परन्तु सरल स्वभाव के हठ विहीन। अब्दुल लतीफ को सुनना उनके असामान्य भावोत्पादक स्वर लहरी में डूबना है। अशोक वाजपेयी के कथनानुसार ''अब्दुल लतीफ की सारंगी को एक तरह से हाशिये पर फेंके जाने का उपक्रम चल रहा था, इसमें एक तरह की अल्प संरचना भी जुड़ी थी। अब्दुल लतीफ एक अल्पसंख्यक वाद्य का अल्पसंख्यक वादक है।''

श्याम मुंशी ने अब्दुल लतीफ की जीवनी उसके भोगे हुए यथार्थ के साथ लिखी है, जो उनके संस्मरणात्मक छाया बिम्बों को ताजगी देता है। अब्दुल लतीफ ने कठिन परिस्थितियों में और गरीबी से संघर्ष करते हुए संगीत साधना की। सूक्ष्म स्वर वैभव के लिए अनेक विडम्बनाएँ और अपमान सहने पड़े है, लेकिन इनके आत्मविश्वास ने सारंगी वादन की कला को गौरव मंडित कर दिया। 20-25 साल की उम्र में सारंगी वादन और गायन में पारंगत हो गये। डॉ. डरू खाँ और फजल खाँ ने इन्हें सारंगी की शिक्षा दी। तवायफों के मुजरों ने इन्हें बहुत सराहा गया। तवायफों के मुजरों से इन्हें शिक्षा एवं संगीत की तालीम मिली, पैसा भी।

गोहद में जन्मे अब्दुल लतीफ खां बचपन में दलित बस्ती में खेलते थे। वहीं उनको ढोलक बजाने की शिक्षा मिली। दलित बस्ती में संगीत बजाने से घर पर मार पड़ती, डांट खाते फिर भी वे संगीत शिक्षा हासिल करते रहे। चार वर्ष की उम्र में इनके माता-पिता नहीं रहे। इनकी चाची ने ही इनकी परवरिश की।

इन्हें हद्दू खाँ ने सारंगी की लय तान की शिक्षा दी। वे ज्यादा समय सारंगी बजाने की रियाज में ही बिताते। उस्ताद हद्दू खां के गुजर जाने पर इन्हें बहुत दुख हुआ। जमर्रूद बाई मोहबाकी तवायफ के साथ संगम करने में इन्हें प्रतिष्ठा मिली।

अब्दुल लतीफ खाँ के शागिर्द थे सिकंदर खां। छुट्टू खाँ के दामाद और लतीफ खाँ के बहनोई भी थे। ये खुर्शीद बाई जिंदरवाकरी के साथ महफिल में सारंगी बजाते थे।

इस बीच इनके मामा उस्ताद बुद्द खां दिल्ली ले गये ताकि सारंगी की बेहतर शिक्षा प्राप्त हो। 1947 के दंगे हुए। इसमें बहुत दुखी हुए, और भोपाल आ गये। यहां दंगे का कोई असर नहीं था। उस्ताद अदिफ खाँ की पुत्री डाशीरन से शादी हुई। दौड़कर काम की तलाश में नये पंख जहां भी रुचि का काम वहीं मिला। इसके बाद झांसी गये जहां इन्होंने हरमोनियम की शिक्षा प्राप्त की। ये तबला, सारंगी, हारमोनियम बजाकर रियाज करते रहे।

झांसी से बम्बई जाने का इशारा मिला। परन्तु भोपाल आने पर भोपाल में गाड़ी से उतर गये, और बम्बई नहीं गये क्योंकि भोपाल में उनकी बहन थी।

भोपाल में कासीम और शफीका से तालीम की। झांसी में 8 वर्ष तक हरमोनियम बजाते रहे। म्यूजिक वर्क में भाग लेने का उन्हें अच्छा मौका मिल गया। इनकी आकाशवाणी भोपाल में वी ग्रेट

आडीशन में पास हुए तो आकाशवाणी भोपाल के डायरेक्टर ने छः माह का कान्टेक्ट दिया। यहां पर सितार, सरोद, वायलीन, सन्तूर, पखावज, नक्कारा बजाना सीख लिया।

आकाशवाणी भोपाल के स्टेशन डारेक्टर के सामने इन्होंने कहा कि जिन साजों को बजाने की बोले रहे हैं उनके अतिरिक्त और बहुत सारे साजों को भी बजा लेते है। और उन्होंने सारे साजों पर उनके सामने गाया भी। मुगनी खाँ जो उनके बराबर नहीं थे। संगीत के नागिन राग का टूल्स प्राप्त करने के लिए उनके शागिर्द बन गये।

मध्यप्रदेश उत्सव 1973 में अब्दुल लतीफ खाँ ने सारंगी वादन में सब उस्तादों को आश्चर्य चकित कर दिया। यह आयोजन अशोक वाजपेयी द्वारा किया गया था। जो बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण आयोजन था।

पंडित मल्लिकार्जुन मंसूर हिन्दुस्तानी संगीत के अजीम गायक थे, नामी गिरामी गायक भी इनका लोहा मानते थे। रमेश नाडकर्णी भी पंडित मंसूर के दीवाने थे। पंडित मल्लिकार्जुन मंसूर के साथ अब्दुल लतीफ ने सारंगी के साथ संगत की। जहां उन्हें ए ग्रेड के सारंगी संगीतकार घोषित किया गया।

सारंगी मेले में 200 संगीतकार उपस्थित थे। इसमें सारंगी पर पन्नें भी पढ़े गये-मोहन नाडकर्णी, प्रकाश वडारा, मुकुन्द-लाट और ध्रुव ज्योति लेख मुख्य थे। पंडित रामनारायण सारंगी वादन अध्यक्ष थे। अब्दुल लतीफ खाँ ने उत्कृष्ट सारंगी बजाई तो सभी उनको उस्ताद मानने लगे। हमीद खाँ के शुक्रगुजार अब्दुल लतीफ खाँ थे। क्योंकि सारंगी वादन में उन्होंने ही अब्दुल लतीफ खाँ को लाये थे। 1991 में बड़ौदा के संगीत सम्मेलन में अब्दुल लतीफ खाँ की फीस 20 हजार रूपये तय की गई। राग मालकौंस में भी इनकी उस्तादी थी।

अब्दुल लतीफ खाँ को तमाम मुल्कों से आमंत्रण आये थे। जिसमें हवाई सफर करने का भी निवेदन किया गया था, लेकिन इन्हें रेल सफर ज्यादा पसंद था। अमेरीकी रिकार्डिंग कम्पनी ने अब्दुल लतीफ खाँ को बुलाया परन्तु उन्होंने आने से इंकार कर दिया।

अब्दुल लतीफ खां सितार वादक हिन्दुस्तान के श्रेष्ठ सारंगी वादक थे। अब्दुल लतीफ खाँ की इनसे मित्रता थी, ये एक दूसरे के फन के कायल थे। ये अनगिनत वाद्यों और तंत्र वाद्यों के कुशल वादक थे।

अब्दुल लतीफ खाँ को चारों प्रकार की सारंगी बजाने का ढंग था। बल्कि इसमें उनकी उस्तादी भी थी। 1. गज की सारंगी, 2. गट्टे की सारंगी 3. गज गहे की सारंगी 4. उंगलियों की सारंगी। अपने समकालिनों में अब्दुल लतीफ खाँ श्रेष्ठ सारंगी वादक थे। सारंगी पर टप्पा मुश्किल होता है परंतु अब्दुल लतीफ खाँ को टप्पा गाने में कोई कठिनाई नहीं थी, स्पेशलाइजेशन थी।

बीमारी की वजह से अब्दुल लतीफ खाँ का 22 अप्रैल 2003 देहावसान हो गया, 24-4-2003 को इनका जनाजा निकाला गया।

'सारंगी के हमसफर' पुस्तक में श्याम मुंशी जी ने अब्दुल लतीफ खाँ के सारंगी वादन की जीवन यात्रा को यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है, जो उनके अतीत की स्मृतियों के बिम्बों, प्रतिबिम्बों को बार-बार नये रूप में प्रस्तुत करता है।

ई-8/73 भरत नगर, शाहपुरा, अरेरा कालोनी, भोपाल(म.प्र.)
मो.- 98265 59989

- डॉ. मधु भट्ट तैलंग

हम कन्या हैं हमें गर्व है,
हम कन्या हैं हमें गर्व है।
हम कन्या हैं हम धन्या हैं,
हमें गर्व है हमें गर्व है।
हम बेटी, पत्नी, बहिने हैं,
माँ के तन के गहने हैं।
हम दुर्गा रूपी लक्ष्मी बाई,
पन्ना धाय, देवकी माई।
हैं लता मंगेशकर और सुबलक्ष्मी,
गान सरस्वती और धनलक्ष्मी।
हम हैं सरोजिनी, कस्तूरबा गांधी,
प्रतिभा पाटिल, इन्दिरा गांधी।
हम पी.टी. ऊषा और किरण बेदी,
सुनीता विलियम्स आकाश भेदी।
हम मीराबाई प्रेम की देवी,
अमृता प्रीतम और महादेवी।
भारतीय मूल्यों की मूरत है नारी,
सीता पद्मिनी जौहर वारी।
वायुयान चलाती मिसाइलें,
निर्भीक करतब की हम मिसालें।

ममता, दया, प्रेम, त्याग, हौंसलों से,
हरते हैं दुख जग का तन-मन औ धन से।
लहराती हम से उन्नति की फसलें,
बहती सुख की नदियां औ नाले।
हम उन दरिन्दों की भूख से शोषित
धन-कामना, वासना से हैं जो पोषित।
हमको बचा लो हम कुल का ज़रिया,
हम से ही सृष्टि का बहता दरिया।

- आस्था सक्सेना

देश में बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं अभियान की शास्त्रीय संगीत में शुरुआत करने वाली पहली बंदिश डॉ. मधु भट्ट तैलंग जी वर्तमान विभागाध्यक्ष संगीत, राजस्थान विश्व विद्यालय जयपुर, शब्द रचना, स्वर रचना के साथ बनाई तथा उसे गाकर स्थापित भी किया। मैं बेटी बचाओ अभियान की ब्रांड एम्बेसडर हूँ तथा शास्त्रीय संगीत की अकिंचन साधिका होने के साथ-साथ देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में से एक पत्रिका कला समय की मानद राजस्थान प्रतिनिधि होने के नाते इस अमूल्य रचना के प्रकाशन के साथ ही देश के आदरणीय कला गुरु जनों से, साहित्य मनीषियों से बेटियों को संरक्षण देने की अपील करती हूँ। ''आज भी प्रतिभाशाली बेटियां, घर, समाज, स्कूल, कॉलेज में ईर्ष्या द्वेष मानसिक प्रताड़ना की शिकार हो रही है। मुझे भी बिना कारण ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है। अत: सावधानी जरूरी है।'' सादर- आस्था सक्सेना

शख्सियत

ब. व. कारन्त (बाबूकोडी वेंकटरमण कारन्त)

जन्म 19 सितम्बर, 1929 बाबूकोडी, दक्षिण कर्नाटक तथा देहावसान 1 सितम्बर, 2002 बैंगलुरु (कर्नाटक) में। साहित्य हिन्दी से एम.ए. तथा पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के सानिध्य में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस से पी-एच.डी. तथा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से नाट्यकला में डिप्लोमा। पं. ओंकारनाथ ठाकुर से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का विधिवत् सघन प्रशिक्षण। कारंत जी कई पदों पर रहे जिनमें से नाट्य प्रशिक्षक, निदेशक : राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नई दिल्ली, संस्थापक निदेशक : बेनका बैंगलुरु तथा भारत भवन न्यास मण्डल के प्रथम न्यासी एवं मध्यप्रदेश रंगमंडल के प्रथम व संस्थापक निदेशक।

कारंत जी को अनेक सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए जिनमें फ़िल्मों के लिए (निर्देशन एवं संगीत) कई राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार और राज्य पुरस्कार, लन्दन फिल्मोत्सव पुरस्कार, संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, भारत सरकार का पद्मश्री अलंकरण, कर्नाटक नाटक अकादमी पुरस्कार, गुब्बी वीरण्णा पुरस्कार एवं कालिदास सम्मान आदि शामिल हैं। कारंत जी ने देश के सभी प्रमुख शहरों में रंगशिविर आयोजित किये और उनके द्वारा अनेक भाषाओं के नाटक निर्देशित एवं संगीतबद्ध किये गये जिनमें हिन्दी भाषा के लगभग 46, कन्नड़ भाषा के लगभग 61, अन्य भाषाओं के लगभग 11, लगभग 40 बाल नाटक, अनेकों नाट्य संस्थाओं और नाट्य निर्देशकों की नाट्य प्रस्तुतियों में रंग संगीत, मध्यप्रदेश रंगमंडल के लिए लगभग 10 नाटकों का निर्देशन। देश के तमाम ऐतिहासिक महत्व के स्थलों में ध्वनि, प्रकाश कार्यक्रम के लिए संगीत और निर्देशन, संस्कृति से हिन्दी और कन्नड़ से हिन्दी में नाट्यानुवाद, आलोचना एवं समीक्षा : यक्षगान (शिवराम कारंत), बच्चों के लिए नाट्य लेखन, नाट्यांतर, फ़िल्म एवं टी.वी. (कन्नड़ हिन्दी) वृत्तचित्र, दूरदर्शन के लिए नाटक, एल.पी. और ऑडियो कैसेट्स (सत्तर नेरलु, इस्पीत राज्य) म्यूजिक (सुमित्रानंदन पंत की कविताओं के लिए)। देश के प्रमुख एवं महत्वपूर्ण फिल्म निर्देशकों की अनेक कन्नड़, उड़िया और बांग्ला फिल्मों के लिए संगीत निर्देशन।

कारंत जी का संगीत (अत्यन्त संक्षेप में) :

ब.व. कारन्त विलक्षण कलामनीषी थे। उनको बचपन से ही अपनी माताजी से यक्षगान शैली में पुरंदरदास के भजन और कथावाचक पिता से रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों के प्रसंग सुनने को मिले, वहीं गुब्बी थिएटर कंपनी से लोकप्रिय लोकशैली, फिल्म के क्षेत्र में जी.वी. अय्यर और राजकुमार जैसे मूर्धन्य कलाकारों का साथ और बनारस में साहित्य मनीषी पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी से साहित्य तथा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के मूर्धन्य कलामनीषी पं. ओंकारनाथ ठाकुर से संगीत। अत: ब.व. कारंत के लिए नाटक, साहित्य, संगीत, फिल्म, लोक-नाट्य, लोक-संगीत, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत, लोक की परम्पराएँ सब कुछ उनकी हद के साथ जद में था। कारंत जी के द्वारा पहली बार 'हयवदन' नाटक के लिए गाना गाया 'गजवदन हे रम्भा...' और इस गाने को सुनकर सभागार में उपस्थित सभी श्रोता मंत्रमुग्ध हो गये। यह गीत इतना लोकप्रिय हुआ कि इसके बाद के बावा के हर नाटक, नाट्य-संगीत की शुरुआत 'गजवदन' गाने से ही हुई। ये स्तर था बावा की गायकी और संगीत की समझ का। कारंतजी का मानना था कि कला एक गीतिशील परम्परा है, यदि यह रुक गयी तो सड़ जायेगी। सुमित्रानंदन पंत की कविताओं के लिए संगीत तैयार किया जिसकी शुरुआत में उन्होंने पुराने दरवाजे के खुलने और बंद होने की ध्वनि का प्रयोग किया वहीं, प्रकृति, पशु-पक्षियों के तत्वों का व्यवहार व उनकी ध्वनियों का संगीत में प्रयोग बावा के लिए ही संभव था। कारंत जी संगीत में नित नये प्रयोग करते थे जिसमें संगीत की मौलिकता, शास्त्रीयता, साहित्य को अक्षुण्ण रखते हुए एक अभिनव व विशिष्ट संगीत, ध्वनि यथा अनुकूल बना देते थे यह सब भी बावा ही कर सकते थे। कारन्त जी अपने आसपास की चीजें जैसे- गुटके की थैली, कोक की बोतल, टूटे टीन, बाल्टी, डिब्बे, पाइप, बड़े-बड़े वृक्षों के पत्ते आदि से एक अलग और अद्भुत ध्वनि की रचना कर देते थे इसलिए कारंत जी का संगीत सदैव अनूठा और कर्णप्रिय रहता था।

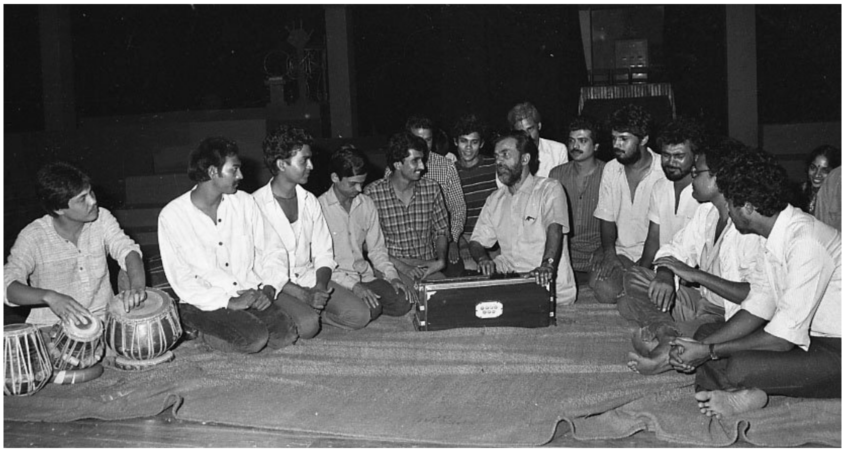

कारंत जी ने अपने जीवन के आखिरी समय में भी नाटक 'खड़िया का घेरा' जो कि उनके कहने पर प्रेमा जी ने तैयार किया था उसके गीतों के लिए डॉक्टरों के लाख मना करने के बाद भी अस्पताल में पलंग पर बैठे-बैठे इन 12 गीतों के लिए संगीत रच डाला। जीवन के प्रारम्भ से लेकर अंत तक सिर्फ और सिर्फ कला-कला और कला...।

- रघुवीर होल्ला, बैंगलोर

स्मृति शेष

भारत भवन में अमृतलाल वेगड़ को किया याद

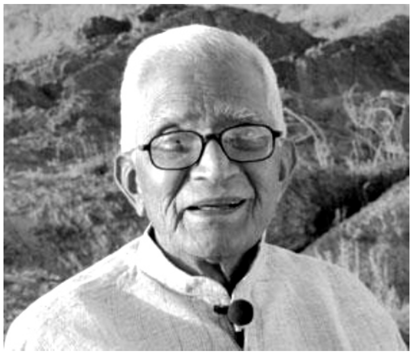

सुविख्यात चित्रकार और अग्रणी लेखक श्री अमृतलाल वेगड़ के असामयिक निधन पर भारत भवन में शोकसभा आयोजित की गयी, जिसमें कलाकारों, संस्कृतिकर्मियों आदि ने श्री अमृतलाल वेगड़ को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। श्रद्धांजलि सभा में श्री विजयबहादुर सिंह, श्री ध्रुव शुक्ल, श्री महेन्द्र गगन, श्री अखिलेश, प्रज्ञा प्रवाह के प्रतिनिधि, श्री देवीलाल पाटीदार, श्री हरचन्दन सिंह भट्टी, प्रेमशंकर शुक्ल समेत अनेक लेखक-कलाकार और संस्कृतिकर्मी शामिल हुए। सभा में भारत भवन की ओर से श्रद्धांजलि स्वरूप शोक प्रस्ताव न्यासी सचिव श्री मनोज कुमार श्रीवास्तव द्वारा पढ़ा गया।

शोक प्रस्ताव

सुविख्यात चित्रकार और अग्रणी लेखक श्री अमृतलाल वेगड़ के निधन से हम सब शोक-संतप्त हैं। आदरणीय वेगड़ जी का भारत भवन और मध्यप्रदेश से गहरी रचनाशीलता का रिश्ता रहा है और वेगड़ जी की आत्मीयता भी हम सबके प्रति अत्यन्त गहरी रही है।

03 अक्टूबर, 1928 को जबलपुर में जन्मे श्री अमृतलाल वेगड़ देश की स्वतंत्रता के बाद एक ऐसी पीढ़ी के प्रतिनिधि व्यक्तित्व रहे हैं, जिन्होंने मानवीय मूल्यों के साथ अपनी रचनाशीलता का तेज कभी मन्द नहीं पड़ने दिया।

विश्वभारती शान्ति निकेतन से कला शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त उन्होंने चित्रकला के क्षेत्र में सर्वथा देशज प्रविधियों से कोलाज और रेखांकनों की रचना की। अपने गुरु आचार्य नन्दलाल बसु के प्रति अगाध श्रद्धा रखने वाले अमृतलाल वेगड़ ने भारतीयता और भारतीय संस्कृति के मूल्यों को अपने सम्पूर्ण रचनाकर्म में जिस संजीदगी के साथ जिया है, वह हम सबके लिए प्रेरणापरक होने के साथ ही नये संकल्पों के लिए संबल की तरह है।

कोलाज, रेखांकन, चित्र आदि के सृजन के साथ ही वे ऐसे यायावर लेखक हैं जिन्होंने नर्मदा की परिक्रमा को अपने जीवन का अप्रतिम लक्ष्य बनाया और नर्मदा परिक्रमा पर आधारित तीन पुस्तकों की रचना की, जो 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा', 'अमृतस्य नर्मदा' और 'तीरे-तीरे नर्मदा' नाम से हम सबके बीच काव्य-लय से ओतप्रोत रोचक और अनूठे गद्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी इन कृतियों का गुजराती, मराठी, बांग्ला, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद हुआ और देश-दुनिया के लिए यह कृतियाँ बेहद सम्मान के साथ बड़े पैमाने पर पढ़ी जाने वाली पुस्तकों के रूप में विख्यात हैं। उनके चित्रों की एक वृहद प्रदर्शनी भारत भवन में 'परकम्मा' शीर्षक से आयोजित करने का हमें सुअवसर मिला था, जिसमें हम उनके कोलाज और रेखांकन आदि से समग्र रूप से बावस्ता हो सके। इस कला-प्रदर्शनी की छाप हम सबके मन पर ताजा है।

श्री अमृतलाल वेगड़ जी को मध्यप्रदेश शासन की राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान से अलंकृत किया गया था। उन्हें मध्यप्रदेश की साहित्य अकादेमी के पुरस्कार समेत अनेक बहुप्रतिष्ठित सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। यहाँ यह म.प्र. शासन के लिये विशेष उल्लेखनीय है कि अभी पिछले दिनों ही मध्यप्रदेश के गौरव सम्मान से हम उन्हें सादर विभूषित कर सके। इसके साथ ही बहुकला केन्द्र भारत भवन के अनूठे समारोह 'सदानीरा' के शुभारम्भ के लिए हमने वेगड़ जी को सादर आमंत्रित किया और उन्होंने कृपापूर्वक यहाँ पधार कर 'सदानीरा' समारोह का शुभारम्भ तो किया ही, एक अविस्मरणीय वक्तव्य भी दिया। उनका इस अवसर पर दिया गया वक्तव्य हम सबके लिए अमूल्य थाती की तरह ही है।

आदरणीय वेगड़ जी भारत भवन न्यास मण्डल के माननीय सदस्य रहे और अनेक गतिविधियों में उनका सक्षम तथा सुयोग्य मार्गदर्शन हमको मिलता रहा। मध्यप्रदेश में कला शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका योगदान अविस्मरणीय है। हम सबके लिए वरेण्य और अत्यन्त आत्मीय शख्सियत अमृतलाल वेगड़ का असामयिक निधन कला क्षेत्र की अपूरणीय क्षति है। उन्होंने कला और साहित्य में जो बहुमूल्य योगदान दिया है, वह हम कभी भी भुला नहीं सकेंगे। हम सब मूर्धन्य नर्मदा अनुरागी, बहुप्रतिष्ठित लेखक, अग्रणी कलाकार श्री अमृतलाल वेगड़ को अपनी कृतज्ञ श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। उनकी सर्जना को, उनके आत्मीय व्यक्तित्व को गहरे सम्मान के साथ अपनी प्रणति देते हैं। ईश्वर से कामना है कि वह आदरणीय वेगड़ जी की आत्मा को शान्ति दे और उनके परिवार को दुख की इस घड़ी में सहन-शक्ति भी दे। ऐसी शख्सियत का जाना हम सबको शोक-संतप्त करता है। मध्यप्रदेश की धरती को अपनी सर्जना और कला-सक्रियता से उर्वर करने वाले वेगड़ जी की स्मृति हमारे मन में अमिट है। बहुकला केन्द्र भारत भवन, म.प्र. शासन संस्कृति विभाग, अकादमियों आदि की तरफ से सम्माननीय श्री अमृतलाल वेगड़ जी के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए दो मिनट का मौन रखा गया।

समाचार

समवेत

उत्कृष्ट पत्रिका के लिए 'रामेश्वर गुरु पुरस्कार' जल केन्द्रित मासिकी शिवम् पूर्णा को

11 जून 2018 माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान भोपाल के पं. झाबरमल्ल शर्मा सभागार में राज्य स्तरीय पत्रकारिता पुरस्कार के अन्तर्गत 'शिवम् पूर्णा' मासिक, भोपाल को उत्कृष्ट पत्रिका के लिए 'रामेश्वर गुरु पुरस्कार', पूर्व मुख्यमंत्री बाबूलाल गौर तथा म.प्र. छत्तीसगढ़ के मंत्री सत्यनारायण शर्मा के द्वारा सजल मालवीय को प्रदान किया गया। कार्यक्रम में उपस्थित गीतकार मयंक श्रीवास्तव, दीपक पंडित, लक्ष्मीकांत जवणे, भँवरलाल श्रीवास, कृष्ण गोपाल व्यास, गोपेश वाजपेयी, एस.एल. प्रजापति व वर्तिका वाजपेयी ने शिवम् पूर्णा परिवार को बधाई दी। ■

कवि कैलाश मड़बैया के अमृत महोत्सव पर राज्यपाल ने की कीर्ति कलश स्थापना बुंदेली संगीत की प्रस्तुति

बुन्देली कवि कैलाश मड़बैया के 75वें जन्म दिवस 'हीरक जयन्ती वर्ष' पर राज्यपाल महामहिम श्रीमती आनन्दीबेन पटेल ने इस समारोह में स्वर्णजड़ित 'कीर्ति कलश कैलाश' की स्थापना पच्चीस जून को, श्रमण (पं. प्रवेन्द्र जैन) एवं वैदिक (डॉ. प्रो. निलिम्प त्रिपाठी) मंत्रोच्चारों के बीच की। महामहिम राज्यपाल ने इस अवसर पर कहा कि बुंदेलखण्ड की साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्परायें महान रही हैं, महान भारतीय धरोहर को सहेजने और साहित्य के सृजन में कैलाश मड़बैया का योगदान नि:संदेह महान, राष्ट्रीय स्तर पर सम्माननीय और अनुकरणीय है। मड़बैया जी ने अपने 3 दर्जन ग्रंथों में जो श्रमण, लोक एवं अन्य साहित्य रचा है वह सदैव प्रेरणात्मक, शाश्वत मूल्यों वाला और प्रशंसनीय है। इस मौके पर कैलाश मड़बैया के 28 वें प्रकाशित ग्रंथ 'मयूर पंख' का लोकार्पण भी हुआ, साथ ही 'शुभ्र ज्योत्स्ना' साहित्यिक पत्रिका के अमृत महोत्सव विशेषांक का विमोचन सहित बुंदेली संगीत की प्रस्तुति हुई।

रपट : संजीव ■

प्रतिष्ठित सांस्कृतिक संस्था अभिनव कला परिषद पर पीएच.डी.

भोपाल की अग्रणीय सांस्कृतिक संस्था अभिनव कला परिषद देश की पहली ऐसी आत्मजीवी सांस्कृतिक संस्था है जिसकी नृत्य, संगीत परम्परा पर शोधपरक सांकेतिक विवेचना विषय पर विक्रम विश्वविद्यालय से इन्दौर की नृत्यांगना सुश्री संतोष देसाई ने प्रसिद्ध संतूर वादिका डॉ. वर्षा अग्रवाल के मार्गदर्शन में पीएच.डी. की। हाल ही 30 जून 18 को इन्दौर में आयोजित 23 वें दीक्षांत समारोह में मध्यप्रदेश की राज्यपाल महामहिन श्रीमती आनन्दीबेन पटेल ने सुश्री संतोष देवाई को डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की। कला की राजधानी भोपाल में वर्ष 1963 से अभिनव कला परिषद भारतीय संगीत के प्रचार-प्रसार, उन्नयन , नवप्रवर्तन एवं नवोदित प्रतिभाओं को मंच प्रदान करने हेतु प्रतिवर्ष नियमित रूप से चार त्रैमासिक संगीत के आयोजन करती आ रही है। जिनमें अब तक 4000 से अधिक गायक, वादक एवं नर्तकों ने भाग लेकर भोपाल को भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ■

संगीत-साहित्य की कृतियाँ

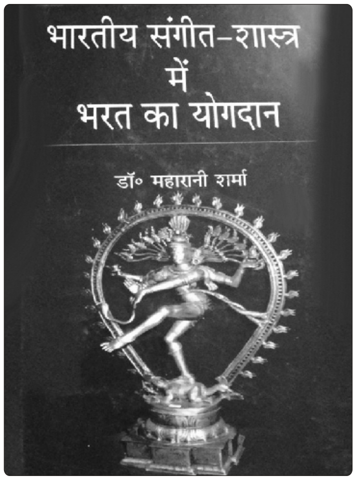

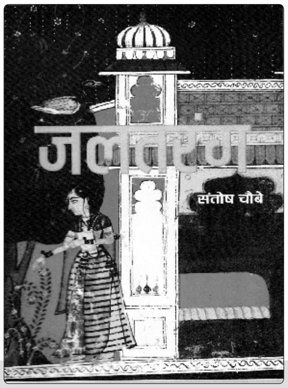

कवि कथाकार और विख्यात शिक्षा शास्त्री श्री संतोष चौबे द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत पर केन्द्रित विरल-विलक्षण उपन्यास 'जलतरंग' जो भारतीय ज्ञान पीठ द्वारा वर्ष 2016 में प्रकाशित है जो पाँच अध्यायों आलाप, जोड़, विलम्बित, द्रुत और छाला में है और जिसमें पहले पहल हिन्दी में शास्त्रीय संगीत को समकालीन रसमय आख्यानक अंदाज में रचा गया है।

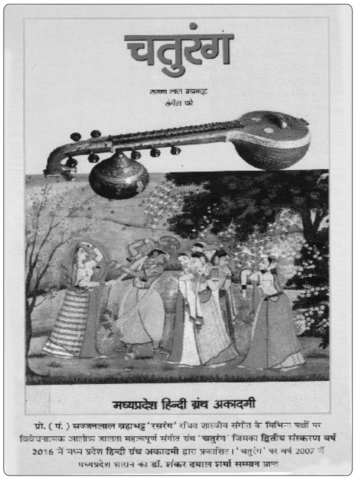

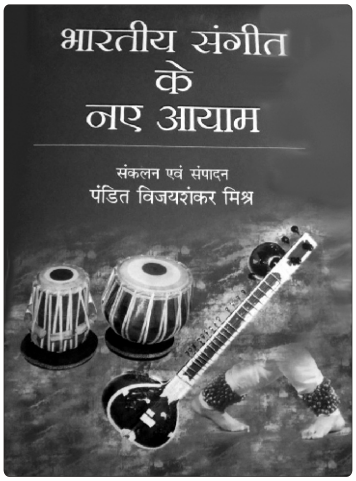

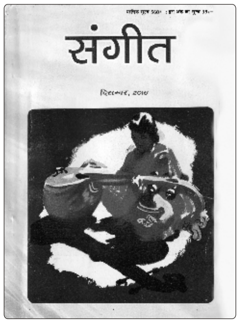

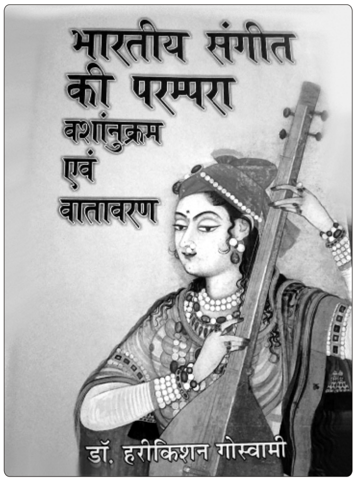

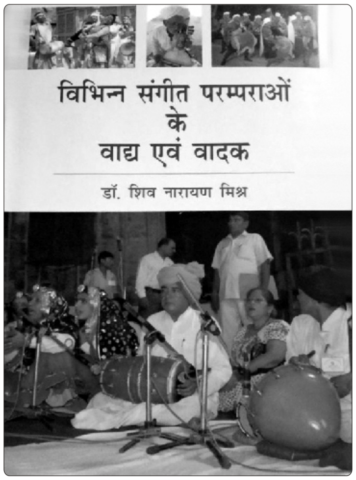

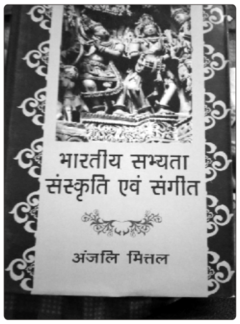

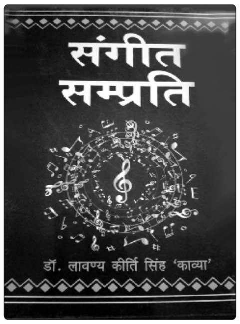

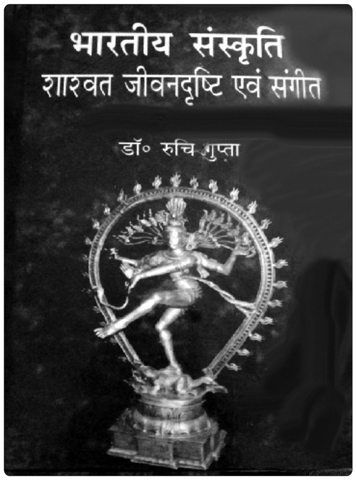

विशेषांक अंक अप्रैल-मई 2018

प्रतिष्ठित सांस्कृतिक पत्रिका कला समय के साथ गणमान्य प्रतिनिधि

भारत सरकार के माननीय केंद्रीय मंत्री डॉ. थावर चंद जी गहलोत साहब व माननीय विधायक, श्रीमती चन्द्र कान्ता जी मेघवाल एवं कला समय प्रतिनिधि आस्था सक्सेना, कोटा (राजस्थान)।

डॉ. अनिता गुप्ता प्राचार्य राजकीय कला कन्या महाविद्यालय कोटा, कला समय प्रतिनिधि आस्था सक्सेना, कोटा (राज.)।

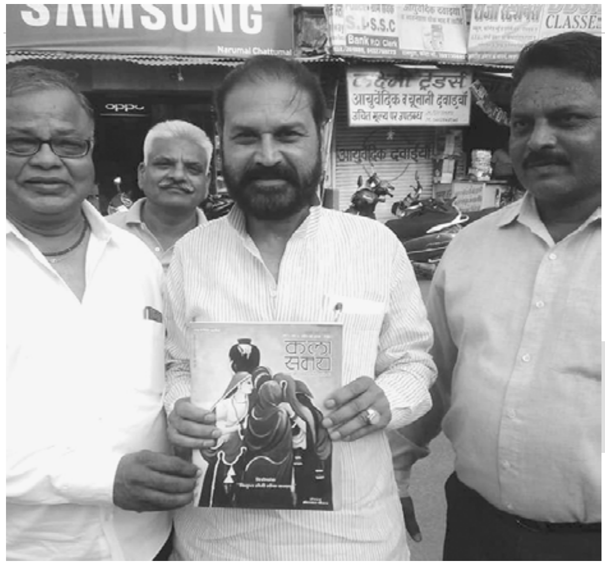

माननीय विधायक संदीप शर्मा कोटा दक्षिण, कला समय प्रतिनिधि आस्था सक्सेना, कोटा (राजस्थान)।

आपके पत्र

पत्रिका के बहाने

श्रद्धेय श्री श्रीवासजी,सादर वन्दे

'कला समय' का लोककला विशेषांक मिला। बहुत-बहुत आभारी हूं। इसमें आपने मेरा 'राजस्थान की लोककलाएं' शीर्षक सर्वाधिक चित्रों तथा सबसे बड़ा आलेख छापकर मुझे कृतार्थ ही कर दिया है। अनुभव यह रहा है कि लोककलाएं चाहे कहीं की हों, सबका अन्तर-मन, अन्तर-गठन तथा अन्तर-भाव एक सा होता है। भौगोलिक संरचना तथा आंचलिकता के प्रभाव से उनमें जो भिन्नता परिलक्षित होती है वह भी देश-काल के सच की सहभागिता का ही दरसाव होता है। इस अंक में जिन महानुभावों का रचना-वैशिष्ट्य रहा वे सब इस बात से सहमत हैं कि लोककलाएं परम्पराशील प्रवहमान होती हैं। समूहजन की सृजन होती हैं। सौंदर्यवर्धिनी होती हैं साथ ही प्रकृति सहजा मनुष्यकृता होती हुई आवश्यकतानुसार उपयोगिताकन लिए रहती हैं। अपने लम्बे साक्षात्कार में डॉ. कपिल तिवारी ने ताल ठोककर इस बात को रेखांकित किया- परम्परा से चली आ रही कला किसी व्यक्ति विशेष का सृजन नहीं है, बल्कि वह एक सामुदायिक सर्जना है जो एक आरण्यक समुदाय अथवा जनपद में एक पीढ़ी तक एक विरासत के रूप में हस्तांतरित होती है।'रूढ़ि और रीति के अंतर में उनका यह कथन उल्लेखनीय है- 'रूढ़ि' और 'रीति' एक ही चीजें नहीं हैं। लोककला 'परम्परा' की रचना है, इसलिए उसमें 'रीति' का 'चलन' और 'पालन' होगा ही।'रूढ़ि' का संदर्भ प्राय: सामाजिक परम्परा में होता है। परम्परा और परम्परा की रचना केवल एक व्यक्ति के लिए नहीं होती और न समुदाय और संस्कृति के संदर्भ के बिना 'मार्त अपने लिए' हो सकती है, इस साक्षात्कार में उन्होंने कई भ्रांत धारणाओं का खुलासा करते लोक, कला, संस्कृति, आज और कल से संदर्भित बहुत से अपचे उलझे सवालों पर भी बेबाक बातचीत की। श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय ने लोक के कलात्मक पक्ष को बड़ी ईमानदारी से रेखांकित करते स्पष्ट किया कि लोक, कला और परम्परा ये तीनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। हमारी परम्परा बंधन नहीं है। बंधन रूढ़ि में होता है। ऐसी परम्परा जो अपने समय से कट जाती है वह रूढ़ि हो जाती है। परम्परा तो प्रवहमान होती है। लेकिन आज के समय की यह समस्या है कि हम रूढ़ि को परम्परा मान बैठे हैं और आधुनिकता तथा उत्तर आधुनिकता के नाम पर जो कुछ दिखाई दे रहा है, उसे लोक और लोक की कला समझते हैं। डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव ने संक्षेप में किंतु सार-रूप में थापा जैसे मांगलिक चिन्ह को बड़ी गहराई से विश्लेषित कर लिखा- 'भारतीय नारी-समाज में अनेक मांगलिक चिन्ह लोकप्रिय हैं किंतु उनमें सर्वाधिक लोकप्रिय प्रतीक है थापा, पंजा या पंचाङ्गुलांक। दाहिने हाथ की पांचों उंगलियों की छाप को ही पंचाङ्गुलांक कहते हैं। दैनिक बोलचाल में इसे थापा, थपिया, पंजा अथवा हाथा कहते हैं। हल्दी से रंगी चावल की पीठी के लेप से बने ऐपन में हथेली को गीला करके जहां चाहें वहां उसे छाप देते हैं, इसीलिए कहीं-कहीं इसे छाया भी कहा जाता है। चाहे पुत्र जन्म हो, विवाह का अवसर हो, गृहप्रवेश अथवा ऐसे ही कोई धार्मिक अनुष्ठान हों, छापे या थापे लगाने की परंपरा देश भर में सर्वत्र पाई जाती है। देवी की पूजा में भी नारियां सात थापियां लगाती हैं जो संभवत: सप्तमातृकाओं का प्रतीक कही जा सकती हैं।' डॉ. श्रीराम परिहार ने लोककला के सामने आ रही चुनौतियों पर अपनी गहन अनुभूतियां व्यक्त कीं। उन्होंने स्पष्ट किया कि चर-अचर सभी में सौंदर्य की उद्भावना के फलस्वरूप ही साहित्य, संगीत, वास्तुकला, मूर्तिकाल और चित्रकला का प्रतिफलन हुआ। ये समस्त कलाएं मानव संस्कृति के विकास के विभिन्न स्तर और स्वरूप ही हैं। कला के सर्जन और उपयोग दोनों में सामूहिकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। लोककलाएं पूरे समुदाय की होती हैं। उन पर किसी परिवार या समूह विशेष का अधिकार नहीं होता है। लोक की सौंदर्यदृष्टि और जीवनदृष्टि ही इनमें अभिव्यक्ति पाती हैं। सामाजिक स्तर पर यह व्यापक परिवर्तन लोककलाओं के लिए अनेक चुनौतियां लेकर सामने आया। लोककलाएं जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करती हैं। संपूर्ण जीवन अपने बहुरंग के साथ लोककलाओं के पास है। कला और लोकजीवन के संबंध अन्तर-गुम्फित हैं। लोक और आदिवासी लोक के गहन अध्येता श्री बसंत निरगुणे ने लोककलाओं के संरक्षण और प्रलेखन पर अपना अनुभवजनित वैचारिक मंथन प्रस्तुत करते कुछ सवाल भी उठाये और विद्वानों को सोचने पर मजबूर भी किया। उनकी दृष्टि में -'क्या पारंपरिक कलाओं के संरक्षण की जरूरत है, उनके साथ 'पारंपरिक' शब्द लगा रहे हैं तो फिर उनको संरक्षण की जरूरत नहीं है। परंपरा उसे स्वयं हर समय में लेकर चली आयेगी क्योंकि परंपरा श्रुति और स्मृति पर आधारित होती है। श्रुति और स्मृति सदैव एक जीवित परंपरा का नाम है। संस्कृति मानव समाज का निर्माण करती है। साहित्य ज्ञान को संचित करता है और कला ज्ञान-विज्ञान के साथ आनंद को रचती है। संस्कृति आचरण में संकलित होती है। साहित्य और कला स्वर, शब्द और शिल्प में संरक्षित होते हैं। भाषा इसका सबसे बडा आधार है। नृत्य-नाट्य-संगीत इसका आश्रय है। चित्र, मूर्ति शिल्प इसका प्रश्रय है। ये सब जीवन का अंग बनकर उसके साथ प्रचारित होने वाले संसाधन हैं।' अपने आलेख के समाहार में उन्होंने स्पष्ट किया- 'प्रलेखन एक गंभीर कर्म है। हल्के-फुल्के ढंग

से प्रलेखन का कार्य नहीं हो सकता। जनजीवन खुली किताब है। उसे जो पढ़ना चाहे वह समर्पित भाव से आये, तभी कुछ प्राप्त कर सकता है, अन्यथा जनजीवन की धारा कभी थमती नहीं, अजस्र बहती है। प्रलेखन हो या न हो संस्कृति सम्पन्न जनजीवन निरंतर गतिशील है और रहेगा।' सम्पादक श्री भंवरलाल श्रीवास ने (संपादकीय में) मनुष्य, प्रकृति और लोककला; तीनों के साथ जो कश्मकश की स्थिति बनी हुई है, संभवत: उसी के रहते कला समय के इस विशेषांक की रूपरेखा बनाई है। उन्होंने लिखा भी- 'प्रकृति और लोक में कुछ भी विलुप्त नहीं होता। या तो हम अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उसे अपने जीवन में स्थान देते हैं या आज के आधुनिक परिवेश के चलते इन पुरानी होती परंपराओं को नकार देते हैं। आज घर, वस्त्र, प्रसाधन, त्यौहार, खान-पान और रहन-सहन का सलीका; मनुष्य को प्रकृति की संगत से दूर कर रहा है। हमारी तथाकथित तरक्की व आधुनिकता मनुष्य और प्रकृति के स्वाभाविक संबंध को ढीला कर रही है जो हमारी विलुप्त होती लोककला का भ्रामक चित्र प्रस्तुत कर रही है।' ये सब मंतव्य-कथन लोककलाओं के वैविध्य विस्तार और वर्तमान की संगत-असंगत, परिस्थिति-परिवेश तथा चुनौतियों से जुड़ी प्रश्नानुकूलताओं को प्रबुद्ध पाठकों के साथ रू-ब-रू करते हैं साथ ही एक सधी हुई चौपाल भी बहस के लिए सज्जित करते हैं। यह अच्छा ही रहा। इसलिए भी कि वर्तमान में देश के अनेक विश्वविद्यालयों में लोककला के विभिन्न विषयों को लेकर शोधकार्य किया जा रहा है किंतु लोककला के संबंध में ही बहुत से सवाल अधरझूल में हैं। ऐसी स्थिति में भी यह विशेषांक उनके लिए और अन्य विद्वानों, कला पारखियों और सुधीजनों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा। मुझे प्रसन्नता है कि पिछले छह दशक से जिस विषय को लेकर मेरा अंतर-मंथन रहा उस पर आपने सर्वथा एक विशेषांक देकर मेरी जिज्ञासा तृप्त की। तेरी-मेरी जैसी उलझन पर विराम लगाया और सर्वथा एक नये सोच का सूत्रपात भी किया है। बहुत-बहुत बधाई।- **डॉ. महेन्द्र भानावत, उदयपुर (राजस्थान)**

'कला समय' का अप्रैल-मई 2018 अंक मिला, एतदर्थ धन्यवाद। कुछ आलेख एवं कुछ कविताएँ पढ़ीं। सभी विषयानुकूल हैं। आपकी पत्रिका में मध्यप्रदेश मुख्य रूप से तथा राजस्थान की कला-विषयक गतिविधियाँ अधिक सम्मिलित रहती हैं। डॉ. कपिल तिवारी से लक्ष्मीकान्त जवणे की बातचीत - 'यदि लोक समुदाय जीवन्त हैं तो इनकी कला 'लुप्त' कैसे हो सकती है' सचमुच विश्वसनीय है। तथापि विलुप्त होती लोक कलाओं पर विदुषी श्रीमती प्रवीण खरे की दृष्टि ध्यातव्य है। सम्पूर्ण पत्रिका का अक्षर-संयोजन, मुद्रण एवं प्रकाशन कलात्मक है, होना भी चाहिए। आपने मेरे लेख-थापा या पंचाङ्गुलांक को पत्रिका में स्थान दिया, आभारी हूँ। -**डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव(भिलाई, छत्तीसगढ़)**

श्रीवास जी, एक संग्रहणीय विशेषांक के लिए धन्यवाद। आवरण पृष्ठ सादगी भरा किन्तु आकर्षक है और अंक लोककला के विभिन्न पहलुओं को उजागर करने में सर्वथा समर्थ। संपादकीय, विशेषांक का मंतव्य स्पष्ट करता है और 'कला निकष' में लोककला की उन्हीं सब विशेषताओं को पिरोया गया है जिसका विस्तार पूरे अंक में किया गया है। डॉ. महेन्द्र भानावत का आलेख राजस्थान की लोककलाएँ सर्वाधिक प्रभावी है और लोककला के विभिन्न रूपों को स्पष्ट करता है। गृहकला, भित्तिकला, आंगनकला, माटीकला, प्रस्तरकला, परकला, कठ-पुतली, मेहंदी, गणगौर, पाठाकला एवं अन्य कलाओं का वर्णन-संपूर्ण राजस्थान मानने ले आए है। डॉ. कपिल तिवारी से लक्ष्मीकांत जवणे की बातचीत लोक, परम्परा, सामूहिकता, लोकरंजकता, निरंतरता, उत्सवधर्मिता आदि लोककला की विशेषताओं को स्पर्श करती है। डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, श्री श्रीराम परिहार व बसंत निरगुणे तो लोककला के आधिकारिक हस्ताक्षर हैं किन्तु अन्य आलेख भी स्तरीय हैं। हाँ, विलुप्त होती लोककलाओं पर सामग्री कुछ कम है।.... शिवकुमार अर्चन व किशन तिवारी की सशक्त रचनाओं के बीच महेश कटारे के बुंदेली छंद अच्छे लगे। निर्मिश ठाकर की वक्ररेखायें उम्दा हैं।.... श्री रामकुमार व बैरागी को याद करना अच्छा लगा। एक अच्छे प्रयास के लिए बधाई। - **सूरजपुरी गोस्वामी, मुलताई (म.प्र.)**

संपादक महोदय, नमस्कार, मेरा सौभाग्य है कि कला समय जो कि सांस्कृतिक धड़कनों का जीवंत दस्तावेज़ है, मुझे पढ़ने को मिला। अब तक चार अंक प्राप्त हो चुके हैं और प्रत्येक अंक एक एलबम सा लगता है। कला साहित्य एक ऐसा अनूठा संग्रह है जिसमें अप्रतिम, ज्ञानवर्धक पठनीय सामग्री समाहित है। कला समय का मुखपृष्ठ अत्यंत आकर्षक होता है। कागज व मुद्रण की गुणवत्ता भी बेहतरीन है। कला मनीषियों के विचार लेख कविताएँ ग़ज़लें सभी स्तरीय और पठनीय हैं। इस बार का अप्रैल मई अंक तो सबसे अच्छा लगा। विलुप्त होती लोककलाओं पर इतनी सामग्री इस अंक में समाहित है कि शायद ही कोई लोककला अछूती रही हो। इतना सुंदर विस्तृत वर्णन इतने सुंदर चित्रों के साथ सचमुच प्रशंसनीय है। कला समय का संपादकीय व कला निकष पढ़ने में रोचक लगता है। कला समय की पूरी टीम इस उत्कृष्ट पत्रिका के प्रकाशन हेतु बधाई की पात्र है। मैं इस पत्रिका के गौरवमयी उज्ज्वल भविष्य के लिये अपनी शुभकामना प्रेषित करती हूँ। - **नविता जौहरी, भोपाल (म.प्र.)**

नन्हें कलाकारों की दुनिया

यह मुन्नियों और मुन्नों का संसार है, इसमें किसी भी किस्म की बिना छापवाले वाले मनों की चौकड़ियाँ और कुलांचे हैं। इन नवांकुरों की भावी छलांगों की सम्भावनाओं को यह पृष्ठ समर्पित है-कला समय।

सुश्री सूर्यागायत्री

भक्ति संगीत की सबसे ज्यादा सुनी जाने वाली गायिका।

सुश्री सूर्यागायत्री 12 वर्ष की कर्नाटक संगीत की उदीयमान गायिका के रूप में सर्वथा नई पहचान बना चुकी हैं। सूर्या वर्तमान में यूट्यूब में कर्नाटक शैली में भक्ति संगीत की सबसे ज्यादा सुनी जाने वाली गायिका के रूप में जानी जाती हैं। सूर्या के महिषासुरमर्दिनि स्तोत्रम् "अयिगिरी नन्दिनी" को दो करोड़ तीस लाख से ज्यादा बार देखा, सुना और सराहा गया है। विख्यात संगीतकार श्री कुलदीप एम पई के सांनिध्य में सूर्या ने संगीत एवं अध्यात्म की शिक्षा–दीक्षा प्राप्त की है। सूर्यागायत्री को संगीत जगत में महान गायिका एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी की नैसर्गिक उत्तराधिकारी के रूप में जाना जाता है।

नाटक : पीली पूँछ

संस्था विहान ड्रामा वर्क्स द्वारा नाटक 'पीली पूँछ' बच्चों की कार्यशाला पशुपालन विभाग के सभागार में सम्पन्न हुई।

महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में

- निर्मिश ठाकर

हिलेरी मांटेल

हर्ता म्यूलर

करिश्मा कपूर

नीतू सिंह

ऊर्जा अधोसंरचना दिवस

प्रदेश में नवकरणीय ऊर्जा की कुल 3951 मेगावाट क्षमता स्थापित (पिछले 6 वर्षों में 8 गुना वृद्धि)

नरेन्द्र मोदी,
प्रधानमंत्री

750 मेगावाट की अल्ट्रा मेगा रीवा सौर परियोजना से उत्पादन शुरु	250 मेगावाट क्षमता की मंदसौर सौर परियोजना स्थापित	म.प्र. ऊर्जा विकास निगम द्वारा राज्य में सौर ऊर्जा आधारित विद्युत चलित वाहनों की शुरुआत

प्रदेश में स्थापित हरित ऊर्जा परियोजनाओं से पर्यावरण को 18 करोड़ वृक्ष लगाने के बराबर लाभ

शिवराज सिंह चौहान,
मुख्यमंत्री, मध्य प्रदेश

अपना सूरज, अपनी छत, अपनी बिजली

घरों/कार्यालयों/संस्थाओं में ग्रिड संयोजित सोलर पावर प्लांट की स्थापना

- 15000 किलोवाट क्षमता के सोलर प्लांट संयंत्र लगाये गये
- नेट-मीटरिंग पर संचालन, 5 वर्षों का निःशुल्क रख-रखाव
- औसत 108 विद्युत यूनिट्स/माह/किलोवाट उत्पादन की गारंटी
- प्रति किलोवाट सिर्फ 100 वर्गफिट छत की आवश्यकता
- 3 से 4 वर्षों में लागत की वापसी
- 30% से 50% तक अनुदान उपलब्ध
- FAR गणना, सम्पत्ति कर से मुक्त
- बैंक से ऋण भी उपलब्ध

मुख्यमंत्री सोलर पम्प योजना

**खेत-खेत पर मुस्कुराता सूरज,
किसानों में खुशहाली लाता सूरज,
पर्यावरण से हाथ मिलाता सूरज**

- 11,796 सोलर पंप लगाए गए
- रिमोट मॉनिटरिंग से कहीं से भी पंप का संचालन देखा जा सकता है
- डीजल पंप उपयोग से मुक्ति
- राज्य में अविद्युतीकृत खेतों में सिंचाई की पुख्ता व्यवस्था
- डी.सी. पंप से सुबह की हल्की रोशनी में ही सिंचाई प्रारंभ
- किसान बने आत्मनिर्भर
- राज्य शासन को बिजली अनुदान में बचत
- बिजली कंपनियों को हानि में बचत
- 3 एच.पी. तक 90% व 5 एच.पी. पर 85% अनुदान उपलब्ध

उजाला योजना

**1 करोड़ 70 लाख LED बल्ब वितरित
साल में 343 करोड़ यूनिट्स की बचत
उपभोक्ताओं के बिल में प्रतिवर्ष रु. 2100 करोड की बचत**

LED ट्यूबलाईट	LED बल्ब	5 स्टार रेटिंग पंखा
• 20 वाट की LED ट्यूबलाईट, 55 वाट की साधारण ट्यूबलाईट के बराबर रोशनी • बिजली की 64% बचत • 3 वर्ष की रिप्लेसमेंट वारंटी • 4.14 लाख वितरित	• 9 वाट का LED बल्ब, 100 वाट के साधारण बल्ब के बराबर रोशनी • बिजली की 91% बचत • प्रतिदिन 6 घंटे इस्तेमाल पर आधी यूनिट बिजली की बचत • 3 वर्ष के रिप्लेसमेंट वारंटी	• 50 वाट का 5 स्टार रेटिंग पंखा, 100 वाट के साधारण पंखे के बराबर • बिजली की 50% बचत • 2.5 वर्ष की रिप्लेसमेंट वारंटी • 1 लाख वितरित

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

नवीन एवं नवकरणीय ऊर्जा विभाग, मध्यप्रदेश शासन

हरित ऊर्जा, बेहतर ऊर्जा

D17004

कला समय

कला और विचार की
द्वैमासिक पत्रिका
अब वेबसाइट पर
पाठकों के लिए सुलभ है।

सुधी पाठक

WWW.KALASAMAYMAGAZINE.COM

के माध्यम से
इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वात्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास